

डॉ० कृपाशंकर पाण्डेय

ई० डब्लू० एस० 44, नीम सराय कालोनी  
मुण्डेरा चुंगी, इलाहाबाद उ०प्र०  
मोबाइल नं०— 9454385490  
Email ID : kshankarp@gmail.com



आज विश्व में आतंकवाद किसी परिचय का मुहताज नहीं हैं। वैश्विक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करने पर हम यह पाते हैं कि आज पूरी दुनिया किसी न किसी रूप में आतंकवाद की चपेट में हैं। भारत में संसद पर हमला, गुजरात के अक्षर धाम मन्दिर पर हमला एवं कश्मीर के रघुनाथ मन्दिर पर हमले की कार्यवाही आतंकवाद की नापाक हरकतें हैं। भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही आतंकवादी हमलों की चपेट में है। वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर पर आतंकी हमले के बाद अमेरिका भी बौखलाया। कुख्यात आतंकी संगठन आई० एस० आई० एस० ने न सिर्फ इराक में अपितु पूरे विश्व में आतंक के कुचक्र रच रहा है। 26 नवम्बर 2015 को छपे दैनिक भास्कर के एक लेख के अनुसार सन् 2015 में सीरिया से नाइजीरिया तक दुनिया भर के अलग अलग देशों में चले सशस्त्र संघर्ष में 1,80,000 लोगों की मौत हो चुकी है। करीब 5 वर्ष पहले यह आकड़ा सिर्फ 49,000 था। सरकारें खौफ के साये में, जी रही हैं। पता नहीं कब, कहाँ और किस रूप में आतंकी वारदात हो जाये! आतंकी अपने जान की परवाह किए बगैर दूसरे की जान लेने को अपना धर्म समझते हैं। जिसे स्वयं के प्राणों का भय न हो उसे कैसे डराया जाए, कैसे समझाया जाए? आतंकवादी के समक्ष जो सब से कम मूल्य की वस्तु होती है, वह है उसकी जिन्दगी! वह निकलता ही है कफन बाँधकर, स्वयं को मृत मान कर। ऐसी परिस्थिति में सुस्पष्ट है कि उसे डराया नहीं जा सकता। मरना और मारना ही उसका एकमेव धर्म है, कर्म है और पुरुषार्थ है। क्या आतंक के साये में जीना हमारी नियति बन जाएगी? क्या इस समस्या का समाधान हम न निकाल सकेंगे? इस लेख में इसी विषय पर कुछ विचार किया जाएगा।

किसी भी समस्या के समाधान के विषय में सोचने के पहले हमें उसके मूल कारणों पर विचार करना होता है। ऐसा व्यवहार मे देखा जाता है कि बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता है। अतः आतंकवाद के भी अपने कुछ कारण होंगे। उस पर सम्यक् विचार की आवश्यकता है। आतंकवाद के कारण पर विचार करने पर हमें ज्ञात होता है कि इसका कारण मनुष्य की वह विकृत इच्छा है, जिसमें वह चाहता है कि उसका सब पर प्रभुत्व स्थापित हो, सारा संसार उसके नीचे आ जाए, उसका धर्म सर्वोपरि हो, उसका धर्म ही विश्वधर्म हो, दुनिया के समस्त संसाधनों पर उसका अधिकार हो क्योंकि वही इस धरती का

सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसकी कौम दुनिया की सर्वश्रेष्ठ कौम है। इस कारण से वह दुनिया भर को पराजित करने के लिए नित नये कुचक्र रचता है, योजनाएं बनाता है। हमला करता है। सबसे बड़ा आश्चर्य इस बात पर है कि अपनी इस विकृत इच्छा को वह ईश्वरीय इच्छा समझता है और इस कार्य को ईश्वरीय कार्य मानकर पूर्ण मनोयोग से सम्पादित करता है। इसमें जो रोड़ा बनता है उसे वह ईश्वर विरोधी समझता है और उसकी हत्या को ही धर्म समझता है। स्पष्ट है कि आतंकवाद एक विकृत मनोदशा का परिणाम है, एक अतृप्त और अमानवीय इच्छा का परिणाम है। एक गहरी अतृप्ति का भाव इसके पीछे है। सब पर अधिकार करके इस अतृप्ति को तृप्त करने का दुष्कर्म है आतंकवाद। अपने मन के अनुसार संसार को चलाने की महत्वाकांक्षा की पूर्ति का कदम है आतंकवाद! मन की इन्हीं कुकल्पनाओं एवं बुरी इच्छाओं ने मनुष्य के अन्दर आतंकवाद एवं हिंसा को जन्म दिया। और उसके पीछे तथाकथित धार्मिकता का लबादा लादा गया जो किसी भी प्रकार से मानवीय नहीं है, वैज्ञानिक नहीं है और नैतिक नहीं है। परन्तु धर्म विशेष के तथाकथित झण्डाबरदारों ने आतंक को जेहाद का नाम देकर भोले-भाले नवयुवकों को अपनी ओर खींचा और उनका प्रयोग हिंसा के वैश्वीकरण के लिए किया। उन नवजवानों को जिन्हें अभी जीवन के विविध रंगों का पता नहीं, जीवन के महान् उत्सवों का पता नहीं, प्रेम के अद्वितीय अवदानों का पता नहीं उन्हें धर्म और मजहब के नाम पर ईश्वर और अल्लाह के नाम पर ईश्वरीय कार्य और जेहाद के नाम पर बरगलाया जाता है और व्यवस्था के खिलाफ आतंक की आग में झोक दिया जाता है। उन बेरोजगार नवजवानों को समझाया जाता है कि मरने पर उन्हें जन्नत मिलेगी और जी गये तो प्रभूत सम्पदा और अनेक भोग्य पदार्थ! उन्हें इस बात के लिए निश्चिन्त किया जाता है कि यदि वे लौट के न आए तो उनके परिवार का भरण पोषण किया जाएगा और उनकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति की जाएगी। इतना विश्वास पाने के बाद नौजवान के अन्दर खून सवार हो जाता है और फिर बिना अपनी जान की परवाह किए, जन समूह को अपना निशाना बनाता है और फिर आत्मघात कर लेता है।

इस प्रकार से सुस्पष्ट है कि आतंकवाद का कोई मजहब नहीं होता है, आतंक ही उसका मजहब है। वे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, नहीं होते वे सिर्फ और सिर्फ आतंकवादी होते हैं और अपने आकाओं की इच्छापूर्ति के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करते हैं। उनके आका भी विकृत मनोदशा, अतृप्त तथा हिंसक इच्छाओं से युक्त एवं भ्रम में जीने वाले होते हैं। बहुत बार तो उन्हें अपनी इस बुराई का अनुभव भी होता है परन्तु हिंसा और आतंक में वे इतने डूब चुके होते हैं कि वे पुनः सन्मार्ग पर आना नहीं चाहते और एक सामान्य जीवन उनके लिए स्पष्ट सा हो जाता है। उनकी असहिष्णुता, अवांछित अनियंत्रित लिप्सा एवं अत्याधुनिक शस्त्रों की सुलभता आतंकवाद को जीवित रखे हुए है। इस प्रकार से आतंकवाद के मूल में क्या है, उसकी कार्यप्रणाली क्या है, उसके लक्ष्य क्या हैं, स्पष्ट हुआ। अब विचारणीय यह है कि इस समस्या का समाधान कैसे हो? हमारे ऋषियों ने समग्र वसुधा को एक परिवार माना है:-

**अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।<sup>(1)</sup>**

वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, धर्म और राष्ट्र की सीमा से ऊपर जाकर समग्र विश्व को एक परिवार मानना होगा जिसका हमारे ऋषियों ने हजारों वर्ष पहले उपदेश दिया है। दुनिया के किसी भी राष्ट्र पर होने वाले आतंकवादी हमले को समग्र मानवता और समग्र परिवार पर हमला माना जाए। उन देशों को अपनी क्षुद्र हरकतों से बाज आना होगा जो अपने निहित स्वार्थों के लिए आतंकी ताकतों को भड़काते हैं और उन्हें संसाधन उपलब्ध कराते हैं। ऐसे देश ही दुनिया के वास्तविक शत्रु हैं। सर्वप्रथम प्रत्येक देश के नीति नियन्ताओं को अहिंसा का महत्व समझना होगा क्योंकि अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। अहिंसा परमो धर्मः<sup>(2)</sup> हमारा प्राचीन संदेश है। श्रुति और स्मृतियों ने अहिंसा का संदेश दिया है।<sup>(3)</sup> विश्व के कुछ राष्ट्र बाहर से अहिंसक होते हैं परन्तु अन्दर की उनकी जो नीतियाँ हैं, उसमें हिंसा के भाव छुपे होते हैं।

तो जब तक इस तरह के राष्ट्र अपनी दोमुँही नीतियों का परित्याग नहीं करेंगे तब तक आतंकवादियों को अहिंसा का पाठ कैसे पढ़ाया जा सकता है? आतंकवादियों को भ्रम है कि उनका ईश्वर, उनका धर्म ही सवेश्रेष्ठ है। परन्तु हमारे प्राचीन ऋषियों ने एक ही परमात्मा को सर्वत्र अनुस्यूत माना है जिसमें देश, जाति और धर्म की कोई सीमा नहीं है।

**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः । सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥?**

**कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः । साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥<sup>(4)</sup>**

जब एक ही परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है तो कौन किसकी हिंसा करेगा। हमारे ऋषियों की दृष्टि व्यापक है वे सर्वत्र एकत्व का दर्शन करते हैं:-

**यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति । सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥<sup>(5)</sup>**

हृदय तो आतंकवादियों के पास भी होता है यदि दुनिया के सभी धर्मों के धार्मिक नेता एक झण्डे के तले आकर आवाज उठाएँ और आतंक के पैरोकारों को खुली वार्ता के लिए आमंत्रित करें तब संभव है कि कुछ मात्रा में आतंकवादियों का भी हृदय परिवर्तन किया जा सकता है। हमारी आर्ष विचारणा सबको साथ लेकर चलने की रही है। ऋषि अपने शिष्यों के बहाने समग्र समाज को संदेश देते हैं कि हम सब मनुष्य हैं अतः साथ-साथ प्रेम से रहने की आदत डालें और मनोमालिन्य से दूर होकर सौहार्द को चरितार्थ करें –

**संगच्छध्वंसं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।**

**समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम् ॥<sup>(6)</sup>**

हम अपने मस्तिष्क को खुले रखें और सद्विचारों को चारों ओर से ग्रहण करें, किसी तरह का कोई पूर्वाग्रह न रखें— **आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः ॥<sup>(7)</sup>** समस्त संसार के राष्ट्र भारतीय ऋषियों की इस देशना को आत्मसात कर सकें तो आतंकवाद को अवश्य ही एक न एक दिन समाप्त किया जा सकता है। ऋषि कहते हैं कि चूँकि हमारे कान और आँख से ही संसार की बुराइयाँ हमारे अन्दर प्रवेश करती हैं और हमारे मानस को अपवित्र बनाती हैं अतः हम अपने कानों से सद्वचन सुनें एवं आँखों से कल्याणकारी दृश्य देखें! **भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम् देवाः भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ॥<sup>(8)</sup>** भारतीय ऋषियों ने समग्र विश्व के कल्याण की कामना की है। **लोकाः समस्ताः सुखिनः भवन्तु** जैसी सूक्तियाँ हमारे यहाँ दैनिक प्रार्थनाओं में

सम्मिलित हैं। आज विश्व जिस मुहाने पर खड़ा है वहाँ पर हिंसा से काम बनने के बजाए और बिगड़ जाएगा। अतः हमें अहिंसा की शरण ग्रहण करनी ही होगी। महात्मा बुद्ध ने कहा है कि हिंसा से हिंसा को शान्त नहीं किया जा सकता, वैर से वैर को शान्त नहीं किया जा सकता।<sup>(9)</sup> अतः यदि यह कहा जाए कि समस्त राष्ट्र मिलकर आतंकवादियों को बलपूर्वक कुचल दे तब भी आतंकवाद को समाप्त नहीं किया जा सकता। वर्तमान विश्व में कुख्यात आतंकवादी संगठन आई० एस० आई० एस० के खिलाफ अमेरिका, रूस और फ्रांस ऐसी ही कार्यवाहियाँ कर भी रहें हैं परन्तु उन्हें कहाँ तक सफलता मिली है यह किसी से छिपा नहीं है। यह तीनों देश आतंकवाद से पीड़ित हैं।

आतंक के पैरोकारों से मिलकर बात करनी होगी। समग्र विश्व को एक नये सत्याग्रह के लिये संगठित रूप से कमर कसनी होगी और हिंसा का मुकाबला करना होगा। जहाँ तक सम्भव हो आतंकवादियों को उनके मार्ग से हटाने के लिए अहिंसा और प्रेम से ही काम लेना होगा। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने एक स्थान पर लिखा है कि— संघटक शक्ति विघटक शक्ति से अधिक, एवं अभिकेन्द्रीय बल अपकेन्द्रीय बल से ज्यादा है।<sup>(10)</sup> जब समस्त विश्व अहिंसा का वरण करेगा, तब एक न एक दिन आतंकवादियों के हृदय परिवर्तन की सम्भावना की जा सकती है।

डॉ० राम मनोहर लोहिया का विचार है कि अन्याय के प्रति आत्म समर्पण और खूनी क्रान्ति दोनों के बीच एक मात्र विकल्प सत्याग्रह है।<sup>(11)</sup> यह सत्याग्रह आतंकवाद के विरुद्ध समस्त विश्व को एक साथ करना होगा। शान्ति, सौहार्द और भाईचारे की बिगुल एक साथ फूकनी होगी जिसमें समस्त धर्मों, सम्प्रदायों के लोग होंगे। समस्त वैश्विक नेताओं को कदम से कदम मिलाकर चलना होगा बिना किसी धोखे के। भारतीय विचारणा का यही संदेश है। ऐसा करने से निश्चित रूप से हमें आंशिक सफलता मिल सकती है। आतंकवादी भी मनुष्य होता है, हमें उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन करना होगा और उसकी वैध आवश्यकताओं की पूर्ति भी करनी होगी। इसके बाद भी जो हिंसा का मार्ग नहीं त्यागते तो फिर उनके लिये श्रीमद्भगवद्गीता कहती है— **दुष्टानां वधं पुण्यं**। समग्र विश्व को एक साथ मिलकर इन पर सैनिक कार्यवाही करके इनका अन्त कर देना होगा और फिर तब यही धर्म होगा। मानवता की सुरक्षा के लिए हमें जिस स्तर तक जाना पड़े, जाना चाहिए। परन्तु युद्ध या हिंसा सर्वथा अन्तिम विकल्प होना चाहिए।

हमारी आर्ष मनीषा अहिंसा की पक्षधर है, परन्तु यह अहिंसा कायरों की नहीं, वीरों का भूषण है। हम अन्तिम समय तक अहिंसा का पालन करते हैं। अपराधी को अन्तिम समय तक बदलने की चेष्टा करते हैं और बहुत बार इसमें सफल भी होते हैं, परन्तु यदि विश्वकल्याण के लिए शस्त्र उठाने के सिवा अन्य विकल्प शेष नहीं रहता तो हम शस्त्र भी उठाने से स्वयं को नहीं रोकते। यही भारतीय ऋषि परम्परा रही है। यही ऋषियों का संदेश रहा है। प्राचीन भारत में प्रत्येक राजा का गुरु होता था, जो प्रायः ऋषि ही होता था और वह उसका मार्गदर्शक भी होता था। ऋषियों ने युद्ध की अपेक्षा सदैव शान्ति का ही वरण किया है परन्तु उन्होंने कायरता की शिक्षा कभी नहीं दिया।

इस प्रकार से हमें आतंकवाद के मूल में जाकर उसके कारण का पता करना होगा और फिर आतंकवादियों की उस विकृत मनोदशा, अनीतिपूर्ण महात्वाकांक्षा और भ्रमात्मक दृष्टिकोण को संगठित कर अपनी आर्ष पद्धति से उन्मूलित करना होगा। उन्हें हिंसा के मार्ग को त्याग कर अहिंसा के रास्ते पर लाने के लिये वैश्विक सत्याग्रह का सफल प्रयोग करना होगा। हो सकता है यह विचार कुछ लोगों को हास्यास्पद लगे परन्तु इस विचार से भारतवर्ष अनजान नहीं है। अंग्रेजों के विरुद्ध अखिल भारतीय स्तर पर इसका सफल प्रयोग एक महात्मा के नेतृत्व में भारत कर चुका है। महात्मा गाँधी के अहिंसक सत्याग्रह का हमारी आजादी की लड़ाई में अभूतपूर्व योगदान रहा है।

यह सही है कि हमारे अनेक क्रान्तिकारियों ने जंगे आजादी में अपने प्राणों की आहुतियां दी हैं, परन्तु क्या केवल हिंसा से हम अपनी आजादी को प्राप्त कर सकते थे? इसका उत्तर सदैव नकारात्मक रहेगा क्योंकि भारत की नब्ज में, नाड़ियों में हिंसा नहीं अपितु अहिंसा विद्यमान है, संघर्ष नहीं अपितु सद्भाव विद्यमान है। प्रत्येक देश की अपनी प्रकृति होती है। भारतीय प्रकृति मूलतः अहिंसक है। अतः आतंकवाद रूपी इस वैश्विक दानव का सामना समग्र विश्व संगठित होकर अहिंसक रूप से करे यही हमारी आर्ष पद्धति रही है।

#### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हितोपदेश, नारायण पंडित, 1/69
2. महाभारत, महर्षि वेदव्यास, (अनु0 पर्व) 115/1
3. ऋग्वेद, गीताप्रेस गोरखपुर परमधर्म श्रुति विदित अहिंसा/रामचरितमानस, उत्तर कण्ड
4. श्वेताश्वतरोपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, 6/11
5. ईशावास्योपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, 6
6. ऋग्वेद 1/191/23, ऋग्वेद 1/89/8, ऋग्वेद 1/89/1
7. न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन। अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो।
8. गाँधी-यंग इण्डिया-सितम्बर 1926
9. धम्मपद, महात्मा बुद्ध
10. गांधी दर्शन पर भारतीय दर्शन का प्रभाव, कृपाशंकर पाण्डेय
11. लोहिया विचार, डा0 राम मनोहर लोहिया मार्च 1968 पृष्ठ 128

## उपनिषदों में ब्रह्म का स्वरूप

डॉ० निशा खन्ना

जे० आर० एफ० डीफिल  
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,  
इलाहाबाद



वेद का अन्तिम भाग उपनिषद् हैं। उपनिषद् सभी भारतीय दर्शनों के मूल स्रोत हैं। इन ग्रन्थ रत्नों में वैदिक ऋषियों ने आध्यात्मिक विद्या के गूढ़तम रहस्यों का विशद विवेचन किया है। भारतीय तत्त्व ज्ञान का मूल स्रोत इन्हीं उपनिषदों में प्राप्त होता है। इनमें वेद की शिक्षाओं का सार है ये समस्त वेदों के मूल हैं। उपनिषद् आरण्यकों के विशेष अंग हैं। इन्हें वेदान्त भी कहा जाता है क्योंकि यह वेदों के अन्तिम भाग हैं। धार्मिक सिद्धान्तों का मूल-स्रोत इन्हीं में देखा जा सकता है। उपनिषदों से निकलती हुई ज्ञान की विभिन्न धारायें अध्यात्म जिज्ञासुओं के हृदय को शांत और पावन करती हैं तथा मानव की मंगल साधना करती हैं।

उपनिषद् शब्द का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि यह शब्द उप, नि और सद् धातु में क्विप् प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। "उप" का अर्थ निकट, "नि" का अर्थ श्रद्धा तथा "सद्" का अर्थ है बैठना। इस प्रकार "उपनिषद्" का अर्थ है शिष्य का गुरु के निकट उपदेश के लिए श्रद्धापूर्वक बैठना।

"सद्" धातु के तीन अर्थ होते हैं –

1. विशरण – नाश होना, 2. गति – प्राप्त होना, 3. अवसादन – शिथिल करना।

उपनिषद् का अर्थ है – अध्यात्म विद्या।

शंकराचार्य के अनुसार "उपनिषद्" का मुख्य अर्थ है – ब्रह्म विद्या तथा गौण अर्थ है – ब्रह्म विद्या प्रतिपादक ग्रन्थ विशेष। ब्रह्म के स्वरूप, उससे उत्पन्न जीव तथा जगत के साथ उसका वास्तविक सम्बन्ध, ब्रह्म की प्राप्ति के उपाय आदि विषयों का विस्तृत तथा विशद विवेचन इन उपनिषदों में प्राप्त होता है। उपनिषदों में परम तत्त्व ब्रह्म है, जो अनन्त, नित्य, सर्वव्यापी, सर्वज्ञानी, शुद्ध चैतन्य है। प्रकृति की शक्तियाँ ब्रह्म की अंश मात्र हैं। सूक्ष्म तत्व ब्रह्म ही समस्त जगत का सत् है। ब्रह्म ही ज्ञान है। आत्म चेतना ही परम तत्त्व है। ब्रह्म को अनन्त भी माना गया है।

"वृहदारण्यक उपनिषद्"<sup>1</sup> में कहा गया है कि "वह भी पूर्ण से ही पूर्ण मिलता है, परन्तु इस पूर्ण के उस पूर्ण से निकलने के बाद जो कुछ बचता है, वह भी पूर्ण ही है।"

"पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।"

उपनिषद में ब्रह्म को अज्ञेय भी कहा गया है। ब्रह्म जगत् की अभिव्यक्ति है। अविद्या बन्धन का कारण तथा विद्या मोक्ष का साधन है। ब्रह्म ही अनन्त दिव्य शक्ति है, एवं समस्त जीवन का स्रोत है, जीवन की हर वस्तु उसी में विलीन हो जाती है क्योंकि इन वस्तुओं की उत्पत्ति होती है, उत्पन्न हो जाने के बाद वे जिनमें काम करती हैं और मृत्यु के बाद जिसमें विलीन हो जाती हैं, वही ब्रह्म है, वही सत् है, वही आनन्द है।”

“ब्रह्मन्” शब्द बृह धातु से बना है, जिसका अर्थ बढ़ना या विकसित होना। प्रारम्भ में यह यज्ञ के लिए प्रयुक्त हुआ, किन्तु बाद में यह सर्वव्यापी परम सत्ता का वाचक बना। ब्रह्म परम तत्त्व है। वह जगत् का कारण है। ब्रह्म वह तत्त्व है जिससे सारा जगत् उत्पन्न होता है, जिसमें वह अन्त में लीन होता है और जीवित रहता है।<sup>2</sup>

“वृहन्तो हि अस्मिन् गुणाः इति ब्रह्म” इस व्युत्पत्ति के आधार पर भी ब्रह्म का तात्पर्य उस परमदेव से है, जिसकी सत्ता एवं अनन्त शक्ति पर विश्व के पदार्थों का अस्तित्व एवं परिचालन निर्भर है।

“तैत्तरीय उपनिषद्”<sup>3</sup> में भी ब्रह्म को जगत् का कारण बताया गया है— जिससे यह सारा जड़—चेतनमय विश्व उत्पन्न होता है जीवित रहता है और विलीन होता है, वही तत्त्व ब्रह्म है। वह ही एकमात्र सत्ता तथा जगत् का सार है।

“तैत्तरीय उपनिषद्” में वरुण का पुत्र भृगु अपने पिता के पास पहुँचकर प्रश्न करता है कि मुझे उस यथार्थ सत्ता के स्वरूप का विवेचन कीजिए जिसके अन्दर से समस्त विश्व का विकास होता है और फिर जिसके अन्दर समस्त विश्व समा जाता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है— “वह जिसमें इन सब भूतों की उत्पत्ति हुई और जन्म होने के पश्चात् जिसमें ये सब जीवन धारण करते हैं और यह जिसके अन्दर मृत्यु के समय विलीन हो जाते हैं, वही “ब्रह्म” है।”

उपनिषदों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उपनिषदों में ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं— 1. पर ब्रह्म 2. अपर ब्रह्म

परब्रह्म असीम, निर्गुण, निर्विशेष, निष्प्रपञ्च तथा अपर ब्रह्म ससीम, सगुण, सविशेष एवं सप्रपञ्च है। परब्रह्म अमूर्त है, जबकि अपर ब्रह्म मूर्त है। परब्रह्म स्थिर है, जबकि अपर ब्रह्म मूर्त है। परब्रह्म स्थिर है जबकि अपर ब्रह्म अस्थिर है। पर ब्रह्म निर्गुण होने के कारण उपासना का विषय नहीं है जबकि अपर ब्रह्म सगुण होने के कारण उपासना का विषय है। परब्रह्म की व्याख्या “नेति—नेति” कहकर की गई है, जबकि अपरब्रह्म की व्याख्या “इति—इति” कह कर की गयी है। परब्रह्म को ब्रह्म तथा अपरब्रह्म को ईश्वर कहा गया है। वास्तविकता तो यह है कि पर ब्रह्म और अपर ब्रह्म दोनों एक ही ब्रह्म के दो पक्ष हैं —

ब्रह्म विषयक वर्णन सभी उपनिषदों में भिन्न—भिन्न प्रकार से किया गया है। “ईशावास्योपनिषद्” के अनुसार आत्म तत्त्व अपरिवर्तनशील तथा मन से भी अधिक वेगवान् है। वह स्थिर होने पर भी अन्य सभी गतिशील पदार्थों का अतिक्रमण कर जाता है।<sup>4</sup> आत्म

तत्त्व चलता भी है, नहीं भी चलता, वह दूर भी है, समीप भी है। वह सबके बाहर भी है, अन्दर भी है।

“तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।<sup>5</sup>

यह तत्त्व सर्वगत, स्वप्रकाश, शरीररहित, शुद्ध और स्वयंभू है, वह एक होता हुआ अनेक है। ब्रह्म सबसे परे, सबसे सूक्ष्म, महान तथा सर्वत्र विराजमान है जब आत्म-साक्षात्कार हो जाता है, तब शोक और मोह का विनाश हो जाता है।

ईशावास्योपनिषद् में चौथे से लेकर आठवें मन्त्र तक ब्रह्मविद्या के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। “कठोपनिषद्” के अनुसार ब्रह्म ही जगत् का मूल कहा गया है –

“ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।।”

तस्मि श्लोकाः श्रिताः सर्वे तदुनात्येति कश्चन्। एतद्वैतत्।।<sup>6</sup>

इस सनातन संसार रूपी अश्वत्थ वृक्ष का मूल ऊर्ध्व (ब्रह्म) है, और शाखाओं का विस्तार नीचे है। (ऊपर जो है) वही शुद्ध है, वही ब्रह्म है, वही अमृत (अमर) कहा जाता है। उसी में सब लोक आश्रित हैं। कोई भी उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता।

यह ब्रह्म तर्क से प्राप्त नहीं किया जा सकता। न बहुत अध्ययन या श्रवण से यह लभ्य है। यह “अपरोक्षानुभूति” का विषय है क्योंकि यह अज, नित्य, अमृत, निरीह, निर्विकार, विभु, शाश्वत, कूटस्थ, निर्विशेष एवं अनिर्वचनीय है –

“नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः

न मेधया न बहुना श्रुतेन

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वामा।।”

ब्रह्म को किसी लक्षण (स्वरूप या तटस्थ) से लक्षित नहीं किया जा सकता। इसीलिए दार्शनिकों को इसके सम्बन्ध में “न” निषेधात्मक शब्द का ही प्रयोग करना पड़ता है। यह “अलिंग” है। इसके सूचक शब्द नपुंसकलिंग में ही है, तत्, एतत् आदि। यह मुमुक्षु की “क्षुरस्य धारा निशिता” छुरे की शान नदी धार के समान तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा ही ग्राह्य है।

इस अनिर्वचनीय ब्रह्म का दूसरा भाव “अपर ब्रह्म” भी कहा जाता है। यह भिन्नता भावगत है, वस्तुगत नहीं। अपरब्रह्म को संसार का नियन्ता, राजा के समान शासक माना जाता है, जो मनुष्य के सुकृत एवं दुष्कृत का फल- अनुग्रह एवं दण्ड देता है। इसी को “ईश्वर” शब्द से सूचित किया गया है। इसके वाचक शब्द पुल्लिंग हैं यथा एषः, सः, अयम् आदि। ऊँ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत् किंचन् ऐक्षत लोकन्नुसृजा इति।।”

इस प्रकार उपनिषदों में ब्रह्म ही सद्वस्तु है, उससे परे कुछ नहीं है। वही अग्नि, जल तथा वायु में व्याप्त है। वही अकेला उनके रूप बनाता है- “एकरूपं बहुधा करोति।”<sup>7</sup> आत्मा पाप और पुण्य से परे है, वह कर्म-फल का भोक्ता नहीं है। उपनिषदें ज्ञान के द्वारा कर्मत्याग सिखाती हैं। कैसे कर्म का त्याग होना चाहिये इसका विवेचन “श्रीमद्भगवद्गीता”



में किया गया है। सभी उपनिषदों का सार गीता में सन्निहित है। अतः गीता के प्रत्येक अध्याय में लिखा गया है –

**ॐ तत्सदिति, श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु .....।”**

उपनिषदों में ब्रह्म का आत्मा से तादात्म्य बताया गया है, दोनों सर्वथा एक ही है। छान्दोग्योपनिषद् में “तत्त्वमसि” की व्याख्या करते हुए आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को अनेक दृष्टान्तों द्वारा आत्मा और ब्रह्म की एकता समझायी है। जैसे बरगद का बीज और बरगद का वृक्ष मूलतः एक ही है, जैसे समुद्र से मिलने पर नदियों का जल और समुद्र का जल एक है वैसे ही जीवात्मा और परमात्मा एक हैं। उपनिषदों ने आत्मा और ब्रह्म की एकता का अनुभव करते हुए “सोऽहम् अस्मि, अहं ब्रह्मास्मि” आदि वाक्य कहे गये हैं।

उपनिषदों के अनुसार जगत् को ब्रह्म का ही दूसरा रूप माना गया है, ब्रह्म ही उसका पिता है, पालक है और वही संहारकर्ता है। ब्रह्म अनन्त है और जगत् उसका एक अंश है। “मुण्डकोपनिषद्” में अद्वैत दृष्टि से जगत् और ब्रह्म का सम्बन्ध बताते हुए कहा गया है –

**यथोर्णनाभिः सृजते गृहणते च  
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।  
यथा सतः पुरुषात् केशलोभानि  
तथाक्षरात् सम्भवन्तीह विश्वम् ।<sup>8</sup>**

अर्थात् जिस प्रकार मकड़ा अपने अन्दर से तन्तु बाहर निकालकर जाल बनाता है और फिर उन तन्तुओं को अपने में ही समेट लेता है, जिस प्रकार पृथिवी से औषधियाँ उत्पन्न होती हैं और उसी में लीन हो जाती हैं, जिस प्रकार बिना चेष्टा किये पुरुष के केश और रोम उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से विश्व की उत्पत्ति होती है।

उपरोक्त श्रुति के अनुसार ब्रह्म ही जगत् का निमित्त और उपादान कारण है। इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उपनिषदों का एकमात्र प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म ही है। ब्रह्म की सत्ता क्या है, जगत्-ब्रह्म का सम्बन्ध क्या है, ब्रह्म का स्वरूप क्या है, ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग कौन सा है, ब्रह्म-साक्षात्कार का अर्थ, तथा फल क्या है, ये सभी बातें उपनिषदों में वर्णित हैं। इसी कारण उपनिषदों की उपयोगिता है।

वेदान्त दर्शन के मूल आधार भी ‘उपनिषद्’ ही हैं। ‘वेदान्तसार’ की प्रस्तावना में ही कहा गया है कि ‘वेदान्तो नाम उपनिषत्प्रमाणम्’ अर्थात् उपनिषदों की प्रमाण स्वरूप मानने वाले दर्शन का नाम ही ‘वेदान्त’ है। उपनिषदों की ‘तत्त्वमसि’, सदैव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्’ और “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” इन ऐक्य-अनैक्य श्रुतियों के आधार पर ही वेदान्त दर्शन की भूमि तैयार हुई है।

बहुदेववाद, वैदिक धर्म का प्रथम चरण है किन्तु बाद में वेद में भी यह माना गया है कि यथार्थ में केवल एक ही देवता हैं। ऋग्वेद के कई मंत्र भी एकेश्वरवाद का समर्थन करते हैं। ऋग्वेद का एक प्रसिद्ध मंत्र “एकेश्वरवाद” को इस प्रकार प्रदर्शित करता है –

**“एकंसद्विप्राबहुधावदन्ति, अग्नियमं मारिश्वानमाहुः ।”<sup>9</sup>**

अर्थात् एक ही सत् है, विद्वान लोग उसे अनेक मानते हैं, कोई उसे अग्नि कहता है, कोई यम और कोई मातरिश्वा (वायु)। दूसरे मंत्र में एकेश्वरवाद को इस प्रकार व्यक्त किया गया है – “मद् देवानामसुरत्वमेकम्” अर्थात् देवताओं का वास्तविक सार एक ही है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि वेद में भी अनेकेश्वरवाद से फिर एकेश्वरवाद की ओर विकास हुआ है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उपनिषद् भारतीय तत्व विद्या के स्रोत हैं, वे अनेकता में एकता स्थापित करके जीवन की विभिन्न धाराओं को एक ही महार्णव में विलयित होने का प्रतिपादन करते हैं।

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बृहदारण्यक – 2/5/16
2. छान्दोग्यपनिषद् – 3/14
3. तैत्तिरीय, 3/9
4. ईशावास्योपनिषद् मन्त्र 4
5. ईशावास्योपनिषद् मन्त्र 5
6. कठोपनिषद् – अ०3, व०2, मं-1
7. कठोपनिषद् – अ०-2, व०2/12
8. मुण्डकोपनिषद् – 1/1/17
9. ऋग्वेद – 1/164/46

## हिन्दी-पत्रकारिता इतिहास के आइने में

डॉ० अवधेश कुमार श्रीवास्तव

प्राचार्य

रघुवीर महाविद्यालय,  
रघुवीर नगर, थलोई मछलीशहर, जौनपुर  
मो० नं०- 9450896029



हिन्दी-पत्रकारिता का जन्म हिन्दी प्रदेश से दूर 'कलकत्ता' नगरी में हुआ था प्राप्त सामग्री के आधार पर हिन्दी का पहला पत्र 'उदत्तमार्तण्ड' था। इसका प्रकाशन ज्येष्ठ सदी, सं० 1883, ता० 30 मई 1826 को हुआ था।<sup>1</sup> लगभग डेढ़ वर्ष चलने के बाद यह बन्द हो गया। यह पत्र साप्ताहिक था। सन् 1826 से लेकर 1872 तक हिन्दी पत्रकारिता शैशवास्था में थी। इस अवधि में निकलने वाले उल्लेख पत्र निम्न हैं-

'बंगदूत' (1829), प्रजामित्र (1834), 'बनारस अखबार' (1845), 'मार्तण्ड' (1846), 'ज्ञानदीप' (1846), 'मालवा अखबार' (1849), 'जगदीपक भास्कर' (1849), 'सुधाकर' (1850), 'साम्यदण्ड मार्तण्ड' (1850), 'बुद्धिप्रकाश' (1852), 'ग्वालियर गजट' (1853), 'समाचार सुधावर्षण' (1854), 'प्रजाहितैषी' (1855) 'सर्वहितकारक' (1855), सूरज प्रकाश (1861), जगलाभ- चिन्तक (1861), सर्वोपकारक (1861), प्रजाहित (1861), लोकमित्र (1865), तत्वबोधिनी (1865), ज्ञानप्रदायिनी (1866) सोमप्रकाश (1866), सत्यदीपक (1866), वृत्तान्तविलास (1867), ज्ञानदीपक (1867), कविवचनसुधा (1867), धर्मप्रकाश (1867), विद्याविलास, (1867), वृत्तान्तदर्पण (1867), विद्यादर्श (1869), ब्रह्मज्ञान प्रकाश (1869), पापमोचन (1869), जगदानन्द (1869), जगत प्रकाश (1869), अलमोड़ा अखबार (1870), आगरा अखबार (1870) बुद्धिविलास (1870), हिन्दू प्रकाश (1871), प्रयागदूत (1871), बुन्देलखण्ड अखबार (1871) प्रेमपत्र (1872),<sup>2</sup> उपर्युक्त पत्रों में दैनिक पत्र केवल एक था समाचार सुधावर्षण। शेष मासिक या साप्ताहिक थे। बनारस अखबार (1845) काफी जोरदार था। कविवचन सुधा (1867) भारत की प्रतिभा से प्रकाशित होकर नये युग की सूचना दे रही थी।

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में भारतेन्दु का आगमन एक ऐतिहासिक घटना थी। 'कविवचन सुधा' हिन्दी नवजागरण का प्रतीक था। इसके सम्बन्ध में डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है- "कविवचन सुधा जनता के हितों के लिए लड़ने वाले निर्भय सैनिक की तरह थी।<sup>3</sup> 1874 में हरिश्चन्द्र मैगजीन का प्रारम्भ हुआ। इसके प्रकाशन के साथ हिन्दी भाषा को एक निश्चित रूप मिला। 1874 ई० में हरिश्चन्द्र मैगजीन का नाम हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, कर दिया गया। इसमें साहित्य, विज्ञान, धर्म, राजनीति, पुरातत्व नाटक, कविता, आलोचना, हास्य व्यंग आदि सभी विषयों की सामग्री प्रकाशित होती थी। 1874 ई० में ही भारतेन्दु ने

महिलाओं के लिए बालबोधिनी का प्रकाशन आरम्भ किया। इन पत्रिकाओं के द्वारा उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में युग-निर्माण का कार्य किया। 1873 ई० से लेकर 1900 ई० तक हिन्दी पत्रकारिता उन्हीं के आदर्शों पर चलती रही। इस अवधि के अन्तर्गत निम्नलिखित महत्वपूर्ण पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं—

भारतमित्र, 1877, हिन्दी प्रदीप 1877, उचित वक्ता 1878, आनन्द कादम्बिनी 1881, प्रयाग समाचार (1882), हिन्दोस्थान 1883, पीयूष प्रवाह (1884) शुभचिन्तक 1888, हिन्दी बंगवासी 1890, कवि व चित्रकार 1891, साहित्य— सुधा—निधि 1894। हिन्दोस्थान 1885 ई० में काला—कांकर से निकलने लगा इसके पहले यह लन्दन में हिन्दी, अंग्रेजी दो भाषाओं में निकलता था। 1895 ई० में काशी से नागरी प्रचारिणी पत्रिका तथा 1900 ई० में प्रयाग से सरस्वती के प्रकाशन के साथ हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ा। 1902 में समालोचक 1905 में इतिहास और 1909 में इन्दु के प्रकाशन के साथ हिन्दी में गम्भीर साहित्य की सृष्टि होने लगी।

1921 ई० तक आते-आते साहित्यिक और राजनीतिक पत्रों की दो धाराएं हो गईं। राजनीतिक क्षेत्र में अभ्युदय (1905) प्रताप 1913, कर्मयोगी 1914, विश्वमित्र 1916, स्वतन्त्र 1920। द्वितीय महायुद्ध के कारण इनमें अत्यधिक उत्साह आ गया था।<sup>4</sup> 1921 के बाद साहित्य के क्षेत्र में माधुरी 1823, चांद 1923, मनोरमा 1924, विशाल भारत 1925, कल्याण 1926, सुधा 1927, त्यागभूमि 1928, हंस 1930, कमला 1939, मधुकर 1940, विश्व-भारती 1942, कुमार 1944, जया साहित्य 1945, हिमालय 1946, प्रतीक 1947 आदि पत्रिकाओं ने विशेष ख्याति प्राप्त की।<sup>5</sup> दैनिक पत्रों में हिन्दी 'आज' ने पथ-प्रदर्शक का कार्य किया। उसकी परम्परा में सैनिक 1928, शक्ति 1930, प्रताप 1931, नवयुग 1932, नवराष्ट्र 1933, नवभारत 1934, अधिकार 1938, विश्वमित्र (बम्बई 1941, और दिल्ली 1942), संसार 1943 नया हिन्दुस्तान 1944 जयहिन्दा, 1946 और सन्मार्ग 1946 आदि दैनिक पत्र प्रकाशित हुए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद त्रैमासिक और मासिक दोनों प्रकार की साहित्यिक और शोध-पत्रिकाओं में एक नया उत्साह जागृत हुआ। नागरी-प्रचारिणी पत्रिका (काशी), हिन्दी अनुशीलन (प्रयाग), सम्मेलन पत्रिका इलाहाबाद, भारतीय-साहित्य (आगरा), राजस्थान भारती (बीकानेर) मरुभारती (जयपुर), हिन्दुस्तानी (इलाहाबाद), हिन्दी-विश्वभारतीय (शान्ति निकेतन), समन्वय (आगरा) आदि शोध पत्रिकाएं नये विश्वास के साथ हिन्दी साहित्य में तत्पर हुईं। थीं।

विगत बीस वर्षों में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के क्षेत्र में कुछ विशेष प्रवृत्तियां विकसित हुईं। पहली यह कि पत्र पत्रिकाओं का या तो व्यवसायीकरण हुआ। दूसरी बात यह कि पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ अनियतकालिकता की मुहर लगती जा रही है। इस समय साहित्य की उल्लेखनीय पत्रिकाओं में पहल जबलपुर, साक्षात्कार भोपाल, संचेतना (दिल्ली), हंस (दिल्ली), मधुमती (उदयपुर), सम्बोधन (राजस्थान), हिमप्रस्थ (शिमला), दस्तावेज (गोरखपुर), वर्तमान साहित्य (गाजियाबाद), अक्षरा (भोपाल), अन्यथा (लुधियाना), आदि प्रमुख हैं।

अशान्ति के बावजूद साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रकाशन के क्षेत्र में हिमाचल प्रदेश से सेतु—शिमला तथा ईरावती धर्मशाला दो पत्रिकाएं निकल रही हैं। बिहार पटना से कसौटी, आलोचना, जमशेदपुर से दस्तक, शब्द—कारखाना, जमालपुर बिहार, जमालपुर मुंगेर से संवेद और धनबाद से सृजन—परिवेश, भोपाल से वसुधा और समरलोक, इन्दौर से आवेग, रायपुर से अक्षरपर्व, खण्डवा से अक्षत जैसी पत्रिकाएं निकल रही हैं। सीकर राजस्थान से तटस्थ (त्रैमासिक) और अहमदाबाद गुजरात से आकार ये दो पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं। कोलकाता के भारतीय भाषा परिषद से प्रकाशित (वागर्थ) मासिक एक स्तरीय और चर्चित पत्रिका है। अव ज्ञान—विज्ञान की विविध विषयों से सम्बद्ध पत्रिकाएं हिन्दी में प्रकाशित होने लगी हैं। इनमें अग्रहायण लखनऊ, विज्ञान लोक आगरा, विज्ञान प्रगति, दिल्ली, विज्ञान—परिषद अनुसंधान पत्रिका, प्रयाग, वैज्ञानिक मुम्बई, इंजीनियरी पत्रिका, कलकत्ता किसान भारतीय पन्तनगर, ऊर्जा, अजमेर उल्लेखनीय हैं।

अन्त में यह नहीं कहा जा सकता है कि हिन्दी—पत्र पत्रिकाओं का भविष्य उज्ज्वल नहीं है। क्योंकि पत्रिका के प्रकाशन का क्रम अटूट है।

#### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. समाचार पत्रों का इतिहास, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, पृ०— 93
2. आलोचना, इतिहास, विशेषांक, डॉ० राम रतन भटनागर।
3. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी— नवजागरण समस्याएं, पृ०— 100
4. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, पृ०— 899 ए० 900
5. समाचार पत्रों का इतिहास, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, पृ०— 331

रितु गुप्ता

असिस्टेंट प्रोफेसर,  
हिन्दी विभाग  
जी. एम. एन. (पी.जी.) कॉलेज,  
अम्बाला छावनी



स्वतंत्रता संग्राम में जिस अध्याय की रचना तरुण क्रांतिकारियों ने अपने हृदय के रक्तदान से की थी, आज स्वतंत्र भारत में उसी अध्याय को स्वीकार करते हुए इतिहासज्ञ हिचकते हैं। इतिहास के पृष्ठों पर इसी अध्याय को राष्ट्रीय संग्राम का अंश मानकर पंडितों की कलम की स्याही सूख जाती है। यह संकोच क्यों? इस प्रकार के ज्वलंत सत्य से आँख-मिचौनी आखिर क्यों? इसका एक कारण यह है कि हम उन क्रांतिकारी हुतात्माओं का सही मूल्यांकन करने में आज भी असमर्थ हैं।<sup>1</sup>

फाँसी की रस्सी से झूलते हुए शहीद को तो लोगों ने पहचाना परन्तु संसार के सारे बंधनों का अतिक्रमण करने वाले, कामना तथा वासना रहित वैरागी विप्लवी हृदय से लोग अपरिचित रह गए।

जब भारत को गुलाम बनाने की कोशिशों में साम्राज्यवाद व्यस्त था, तब उसके बुद्धिजीवी यह प्रश्न किया करते थे— “क्या भारत के लोगों की कोई एक कौम है? क्या भारत में रहने वाले तरह-तरह की नस्लों और धर्मों के लोगों को, जिनको जात-पाँत की दीवारों ने अनेक टुकड़ों में बाँट रखा है, जिनमें भाषा के और अन्य अनेक प्रकार के भेद पाए जाते हैं — क्या इस पंचमेल खिचड़ी को एक ‘राष्ट्र’ या एक ‘जाति’ कहा जा सकता है? भारत में हजारों वर्षों से शोषक और शोषितों के बीच संघर्ष रहा है। शोषक सत्ता में रहा और शोषित सत्ता से बाहर। समय बदलने के साथ शोषकों के रूप और स्वरूप भी बदले। वैसे ही संघर्ष के उद्देश्यों में भी परिवर्तन हुए।

जिसमें नस्ल और जाति के कारण प्रमुख रहे। धर्म इन दोनों के बीच कारक बना। इसलिए भी कि जीत का परचम फहराते हुए सात समंदर पार से आकर अंग्रेजों ने यहाँ दस्तक दी।<sup>2</sup> ईस्ट इंडिया कंपनी 1600 में कायम हुई। प्लासी की लड़ाई 1757 में। अंग्रेजी राज के प्रसार में 1757 का साल महत्वपूर्ण है। इन उद्द सौ साल तक अंग्रेजों ने राज्य-विस्तार किया। साथ ही व्यापार-विस्तार भी किया और कहना चाहिए धर्म-विस्तार भी।<sup>3</sup> व्यापार, धर्म और सत्ता इन तीनों ने मिलकर भारतीयों का दोहन किया। हालांकि उनसे पूर्व के हमलावरों ने भी वैसा ही किया, लेकिन अंग्रेजों का भारत में आना और यहाँ आकर भारतीय समाज को एक नए दर्शन से परिचित कराना, पूर्व के हमलावरों और अंग्रेजों में थोड़ा फर्क करता है।

हमें सोलहवीं शताब्दी के एक पुर्तगाली दुआर्ते बरबोसा द्वारा दिए गए जाति के विवरण का अध्ययन करना होगा। बरबोसा ने जाति के पांच प्रमुख तत्वों की शिनाख्त की थी। उसमें से हम सिर्फ पहले तत्व को लेते हैं। उसने जाति को एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था बनाया, जिसके शीर्ष पर ब्राह्मण और सबसे नीचे कल के 'अछूत' और आज के दलित थे।<sup>4</sup> बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था के संदर्भ में गांवों की धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों को देखा था। इसलिए उन्होंने भारतीय गांवों को 'घैटोज' कहा था। जहाँ भंयकर रूप में जाति भेद विद्यमान था।

जहाँ ब्रिटिश भारत के आरंभिक चरण में भी भारतीय समाज विशेष रूप में हिंदू समाज अपनी अमानवीय परंपराओं तथा रूढ़ियों की जड़ों को ही पानी देने में लगा हुआ था। वहीं तरह-तरह की बहसों के बावजूद आखिर में 'एक जाति की दूसरी जाति पर सामाजिक श्रेष्ठता की कसौटी अथवा कर्मकांड के आधार पर बनी जाति श्रेणी के धर्मशास्त्रीय सिद्धांत को अंग्रेजों ने साफ तौर पर और सरकारी मान्यता दे दी थी।<sup>5</sup> इसके पीछे कारण अंग्रेजों को भारत में शासन करना था। अंग्रेज राजा बने और भारतीय मानस प्रजा।

जातियों की परिगणना और उनके नृवंशीय वर्णनों को राज्य द्वारा जमा करने के दौरान इस जानकारी पर भी प्रकाश पड़ा कि परंपरागत श्रेणीक्रम में किस प्रकार कुछ जातियों को सामाजिक और आर्थिक लाभ मिल रहा था और कुछ को नहीं।<sup>6</sup> इसका नतीजा यह हुआ कि कई जातियां शैक्षणिक और व्यावसायिक लाभों के साथ-साथ राजनीतिक प्रतिनिधित्व के मामले में राज्य से विशेष मान्यता पाने की मांग करने लगी। इस बिंदु पर औपनिवेशिक राज्य ने दोहरी भूमिका अपनायी। बकौल धीरूभाई सेठ एक तरफ वह (ब्रिटिश शासक) ब्राह्मणों की तरह पारंपरिक श्रेणीक्रम में हैसियत के लिए विवादरत जातियों का दर्जा निर्धारित करने लगा। दूसरी ओर वह एक न्यायप्रिय तथा आधुनिक शासक भी बना रहा, जो अपनी कमजोर और गरीब प्रजा के अधिकारों और आकांक्षाओं को 'मान्यता' भी देना चाहता था। इस दोहरी भूमिका से ब्रिटिश राज्य को अपने औपनिवेशिक अर्थतंत्र को उदीयमान राष्ट्रवादी आंदोलन के हमले से बचाने में भी मदद मिली। साथ ही कई नयी प्रवृत्तियाँ पैदा हुईं, जिनमें एक यह भी थी कि लोग औपनिवेशिक शासन द्वारा निर्धारित शर्तों और तौर-तरीकों के आधार पर संगठित होने लगे ताकि जाति अस्मिताओं के तौर पर राजनीति में अपने हितों को प्रतिनिधित्व दे सकें और अर्थतंत्र में भागीदारी कर सकें।<sup>7</sup>

समाजवेत्ता और विकासशील समाज अध्ययन पीठ (सी एस डी एस) के निदेशक आशीष नंदी का मानना है कि 'सामंती विद्रोह' या 'प्रथम स्वाधीनता संग्राम' जैसे महासिद्धांतों में बांधकर 1857 जैसी विराट घटना को नहीं देखा जा सकता।<sup>8</sup> सात समुंदर पार की एक ताकत, जिसे भारतीय समाज के बारे में छोटी-मोटी चीजों की जानकारी तक न हो, यहां राज कर रही थी तो समाज के विभिन्न हितों का उसके साथ टकराव होना ही था।<sup>9</sup> एक बिंदु पर आकर इन हितों के बीच एकता बन जाना और टकराव का विस्फोटक रूप ले लेना भी स्वाभाविक था, लेकिन इस तथ्य का आप क्या करेंगे कि भारत में 50 हजार से ज्यादा अंग्रेज नहीं रहे— न 1857 से पहले और न ही इसके बाद यानि 1947 तक। ऐसे में जैसा

डैलरिपल का कहना है – अंग्रेजों का और भारतीयों का भी एक बड़ा हिस्सा यही सोचता था कि वे यहाँ एक किस्म की सहमति से राज कर रहे हैं।<sup>10</sup> यह धारणा 1857 के बाद नष्ट हो गई और ईस्ट इण्डिया कंपनी की जगह सीधे ब्रिटिश ताज के तहत एकतरफा, एकीकृत ब्रिटिश राज की शुरुआत हुई।

1857 एक तरह से दोनों पक्षों की आंख खुलने जैसा था— सतह के नीचे कितनी हिंसा दबी हुई थी, यह एक झटके में जाहिर हो गया। लोगों ने जब अपने अवचेतन पहलू धर्म पर चोट पड़ती महसूस की तो सारा गुस्सा उबलकर बाहर आ गया। उस समय इसे राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की संज्ञा किसी ने नहीं दी। सबके लिए यह धर्म का ही संघर्ष था। लड़ाई के कोई चालीस साल बाद यह सावरकर थे, जिन्होंने इसे राष्ट्रवादी चरित्र और राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम का नाम दिया।<sup>11</sup>

जब हम तत्कालीन भारतीय समाज का अध्ययन करते हैं और विशेष रूप से दलित क्रांतिकारियों की जीवन दशाओं तथा परिस्थितियों पर विचार करते हैं तो हमें बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। हमें उनके बीच आई चेतना को समय के आधार पर समझना होगा। आरम्भ में जातीय अस्मिता और उसके भीतर आई चेतना ने उन्हें उर्जा दी।<sup>12</sup> उदाहरण के लिए उत्तरी भारत में जाटव, पंजाब में रविदासी, दक्षिण में माला मादिगा तथा परिया महाराष्ट्र में महार, बिहार में दुसाध, पासी, चमार आदि जातियों के भीतर सभाओं के उभरने की शुरुआत हुई।<sup>13</sup>

इस तरह जाति अस्मिता के कारण दलित जातियों में भी फिर से गतिशीलता आई। इस गतिशीलता का दूसरा कारण था रोजगार के लिए अपने गांव, कस्बा तथा शहर से अन्य शहरों में जाना।<sup>14</sup> गांव-कस्बों से शहरों की ओर जैसे-जैसे दलितों के कदम बढ़ते गए, उनके रिश्तें विभिन्न ट्रेड यूनियनों से जुड़ते गए। 1871 में शुरू हुई जातियों के श्रेणीकरण की कोशिश ने जातीय आंदोलनों और विमर्श को जन्म दिया।<sup>15</sup> बदले में इन आंदोलनों और विमर्श ने जातियों के श्रेणीकरण को प्रभावित किया।

भारत में बहुत से सवर्ण बुद्धिजीवी भी इस तरह के सवाल उठाते रहे हैं या इन नकारात्मक सवालों को उठाने के आदी हो गए हैं कि दलितों ने तो आजादी के संघर्ष में भाग ही नहीं लिया या झलकारी बाई का नाम तो गजट में है ही नहीं। अपने कुतर्क को सही सिद्ध करने और कराने के लिए वे कभी डॉ० अम्बेडकर का उदाहरण देते हैं तो कभी मायावती और काशीराम का। कुछ इनसे भी दस कदम आगे बढ़ जाते हैं और दलितों के नायकों को खलनायक बताने लगते हैं।<sup>16</sup> हालांकि सवर्णों के बीच से ही कुछ इतिहासकार, पत्रकार तथा समीक्षक ईमानदारी से उन ऐतिहासिक तथ्यों को स्वीकारने भी लगे हैं। जबकि प्रसिद्ध इतिहासकार अयोध्या सिंह का मानना है कि स्वाधीनता संग्राम में सभी जातियों के स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया था। अपने आपको श्रेष्ठ पुरुष और उत्तम जाति मानने वाले ही आजादी के संग्राम में शामिल हुए और अन्य जाति के लोग दूर खड़े हुए तमाशा देखते रहे, ऐसा विवरण हमें इतिहास में नहीं मिलता।<sup>17</sup>



सवर्णों (ब्राह्मणों) में से अधिकांश यह कहते नहीं थकते कि गांधी जी ही हरिजनों के एकमात्र नेता थे। चलो हम कुछ देर के लिए उनकी इस बात को मान लेते हैं। फिर करोड़ों हरिजनों ने गांधी जी की अगुआई में आजादी की लड़ाई में भाग न लिया हो, ऐसा कैसे हो सकता है?<sup>18</sup> गांधी जी ने तो स्वाधीनता संग्राम के दौरान पूरे भारत का भ्रमण किया था। कहा जाता है कि उनके पीछे-पीछे हजारों लोग चलते थे। क्या उनके पीछे-पीछे चलने वालों में दलित जातियों के लोग नहीं होते थे या स्वयं गांधी जी ने क्या मना किया हुआ था कि दलितों को आजादी के संघर्ष में भाग न लेने दिया जाए। उनके भाग लेने से आजादी छूत हो जाएगी।<sup>19</sup>

अयोध्या सिंह उपाध्याय के विचार में यह सशस्त्र राष्ट्रीय महाविद्रोह था। वे लिखते हैं कि 1857 में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध जो महाविद्रोह फूटा था, वह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। सन्यासी विद्रोह से शुरू होने वाली अनेक विद्रोहों की एक सौ साल की लंबी श्रृंखला की यह विस्फोटक परिणति थी।<sup>20</sup>

मदन लाल नवल के विचार में सवर्णों ने हमेशा दलितों को कुचला, सामाजिक रूप से उनको अपमानित किया। फिर भी देशभक्ति में वे सवर्णों से आगे रहे। डॉ० अम्बेडकर पहले व्यक्ति थे जो दलितों की दयनीय दशा देखकर उद्वेलित हुए थे।<sup>21</sup>

शीर्ष इतिहासकार विपिन चन्द्र पाल लिखते हैं कि हमारे देश या अन्य देशों जैसे अफ्रीका और चीन आदि पर उपनिवेशवाद का जो हमला हुआ तो 1860-1870 के बाद लोग समझने लगे कि यह विदेशी ताकत मात्र नहीं है बल्कि औपनिवेशिक ताकत है, पूंजीवादी ताकत है जो देश को अंदर तक खोखला कर देगी। वे लंबे समय तक यहाँ रहकर देश के आर्थिक संसाधनों का दोहन कर अपना हित साधती रहती थी। इसलिए देश के बुद्धिजीवी वर्ग ने सबसे पहले यह समझने की कोशिश की कि उपनिवेशवाद आखिर है क्या? तीन देशभक्तों दादाभाई नौरोजी, आर. सी. दत्त और जस्टिस रानडे ने इस पर गौर किया। उन्हें लगा कि कम्पनी राज के खिलाफ लड़ाई सिर्फ राजे-रजवाड़ों के सहारे नहीं लड़ी जा सकती है। इसमें पूरी जनता को शामिल करना होगा। इसलिए 1870-71 के बाद अंग्रेजों के खिलाफ एक नए किस्म की लड़ाई शुरू हुई और इंडियन नेशनल कांग्रेस का गठन हुआ। क्रांतिकारियों को एक राष्ट्रीय मंच मिला। इसके अलावा प्रदेश/नगर/कस्बा तथा गांव स्तर पर लोगों ने क्रांति के संघर्ष में भाग लिया।

अपनी स्वाधीन और महान् भारत माता का प्रसन्न चेहरा देखने के लिए इन क्रांतिकारियों में वही पागलपन था जो चैतन्य के अन्दर श्री कृष्ण का चेहरा देखने के लिए था। 'जिसकी माता के गले में दासता की श्रृंखलाएं बज रही हैं वह क्या अपने को दुर्बल सोचता हुआ बैठा रहेगा?'<sup>22</sup>

आज इन क्रांतिकारी शहीदों की याद में ऐसा कुछ है जो पूरी तरह निराश और उदास नहीं होने देता। हमारे मन में उन्हें जो याद करने का संकल्प जगा है, आम जनता में उन भावनाओं को पुनः जागृत होने का ही परिणाम है, उस बीज से उत्पन्न फल ही है जिसे इन शहीदों ने अपने खून से गाते हुए सींचा था -

सूख जाए न कहीं पौधा ये आजादी का  
खून अपने से इसे इसलिए तर करते हैं।  
दरो दीवार पे हसरत की नजर करते हैं  
खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हैं।।

#### संदर्भ ग्रन्थ सूची

- 1 चतुर्वेदी नरेशचन्द्र—स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास: चाँद का फाँसी अंक, राजकमल प्रकाशन, न. दि; पृष्ठ 5
- 2 नैमिशराय मोहनदास – स्वाधीनता संग्राम में दलितों का योगदान, नीलकण्ठ प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली; पृष्ठ 6
- 3 डीन्कर डी.सी.—स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ 15
- 4 नैमिशराय मोहनदास – स्वाधीनता संग्राम में दलितों का योगदान, नीलकण्ठ प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली; पृष्ठ 6
- 5 जौहर के.एल.— स्वतंत्रता संग्राम के अमर शहीद, स्नेह प्रकाशन, नोएडा, पृष्ठ 63
- 6 नैमिशराय मोहनदास – स्वाधीनता संग्राम में दलितों का योगदान, नीलकण्ठ प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली; पृष्ठ 7
- 7 स. त्रिपाठी वचनदेश: क्रांतिकारियों के ऐतिहासिक दस्तावेज राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 9
- 8 नैमिशराय मोहनदास – स्वाधीनता संग्राम में दलितों का योगदान, नीलकण्ठ प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली; पृष्ठ 9
- 9 वही, पृष्ठ 9
- 10 वही, पृष्ठ 9
- 11 डीन्कर डी.सी.—स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ 21
- 12 नैमिशराय मोहनदास, स्वाधीनता संग्राम में दलितों का योगदान, नीलकण्ठ प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली पृष्ठ 10
- 13 वही, पृष्ठ 10
- 14 चतुर्वेदी नरेशचन्द्र—स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास: चाँद का फाँसी अंक, राजकमल प्रकाशन, न. दि; पृष्ठ 15
- 15 वही, पृष्ठ 16
- 16 नैमिशराय मोहनदास, स्वाधीनता संग्राम में दलितों का योगदान, नीलकण्ठ प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली; पृष्ठ 11
- 17 वही, पृष्ठ 11
18. डीन्कर डी.सी.—स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ 18
- 19 वही, पृष्ठ 19
- 20 नैमिशराय मोहनदास, स्वाधीनता संग्राम में दलितों का योगदान, नीलकण्ठ प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली; पृष्ठ 13
- 21 वही, पृष्ठ 19
- 22 स. त्रिपाठी वचनेश: क्रांति के वे दिन, पी.पी.पी. एच. प्रकाशन, द्वि.स. 1976, पृष्ठ 178

योगनाथ शुक्ल

शोधच्छात्र

संस्कृतविभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

Email-yognathshukla123@gmail.com



सृष्टि के आरम्भ से लेकर अद्यावधि लोग भाषा का प्रयोग करते चले आ रहे हैं। यद्यपि वाणी का प्रयोग तो सभी प्राणी करते हैं परन्तु सभी प्राणियों की वाणी भाषा नहीं कही जा सकती है। महाभाष्यकार पतंजलि 'भाषा' शब्द का अर्थ 'व्यक्तायां वाचि' व्यक्त अर्थात् जिसमें शब्द और अर्थ स्फुट होते हैं, अव्यक्त अर्थात् जिसमें शब्द तथा अर्थ अस्फुट होते हैं। जिस भाषा में एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के साथ वार्ता करने में समर्थ होता है अर्थात् जिस भाषा के साथ वार्तालाप हो सकता है वही, भाषा हो सकती है। निरुक्तकार भी ऐसे ही कहते हैं "अणीयत्वाच्च शब्देन संज्ञाकरणे व्यवहार्थ लोके"<sup>1</sup>। भाषा में कोई न कोई शब्द होता है, शब्द के बिना भाषा का निर्माण नहीं हो सकता है। काव्यादर्श में दण्डी कहा है— कि "वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते"<sup>2</sup> दण्डी ने यह कहा है कि यह सम्पूर्ण जगत् अन्धकार से परिपूर्ण होता, यदि संसार में शब्दरूपी ज्योति का प्रकाश न होता ।

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम् ।

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ॥<sup>3</sup>

शब्द हमारे सामने किस प्रकार से उपस्थित होता है यह प्रक्रिया पाणिनीय शिक्षा में वर्णित है—

आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया ।

मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥<sup>4</sup>

शब्द भी एक विज्ञान है। जैसे राम शब्द का निर्माण कैसे होता है? तथा कौन प्रत्यय लगता है? यह समस्त निर्माण की व्यवस्था विज्ञान है, ज्ञान है 'राम' शब्द। यह भी विदित है कि मनुष्य ज्ञानमार्ग के द्वारा ही विज्ञान तक पहुँचता है। अर्थात् ज्ञान ही विज्ञान में परिवर्तित हो जाता है। जैसे वृक्ष को देखकर यह ज्ञात होता है कि यह वृक्ष है, वृक्ष में विज्ञान क्या है? विज्ञान यह है कि वृक्ष में अंकुरण कैसे हुआ? किस पर्यावरण में यह वृक्ष विकास करता है? वृक्ष का मूलाधार किस प्रकार का होता है? किस प्रकार इसका फल होता है? यह सब वृक्ष के विषय में ज्ञान ही विज्ञान होता है जैसे वनस्पति विज्ञान ( botany )। इसी प्रकार से भाषा के विषय में ज्ञान करना जैसे— भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई? भाषा का आदिरूप क्या था? किस भाषा का किस भाषा के साथ मेल होता है? किस भाषा का किस भाषा के साथ

अमेल होता है? कैसे भाषा का विकास हुआ? विकास का कारण क्या है ? यह सब भाषा के विषय में ज्ञान ही भाषाविज्ञान है। भाषाविज्ञान में प्रमुख रूप से ध्वनिविज्ञान का, पदविज्ञान का, वाक्यविज्ञान का, अर्थविज्ञान का कोषविज्ञान का अध्ययन होता है। यह सभी विज्ञान पाणिनीय व्याकरण में मिलते हैं।

भाषाविज्ञान तथा व्याकरण दोनों का सम्बन्ध शब्दशास्त्र से है। भाषाविज्ञान व्याकरण का एक दूसरा नाम है। व्याकरण का प्रयोग वेद के आरम्भ से ही हो रहा है वेदों में इसे वेद का मुख **“मुखं व्याकरणं स्मृतम्”**<sup>5</sup> कहा गया है। अतः पाणिनीय व्याकरण से भी पूर्व व्याकरण का प्रयोग होता था। अष्ट वा नव वैयाकरणों के नाम स्वयं पाणिनि ही लेते हैं। यथा— गालव का, व्याडि का, शाकल का तथा स्फोटायनादि। वेद में व्याकरण के ज्ञान के लिये प्रातिशाख्य ग्रन्थ हैं यथा— ऋक् प्रातिशाख्य, यजुर्वेदीय प्रातिशाख्य, पुष्पसूत्र प्रातिशाख्य, ऋक्तनत्र प्रातिशाख्य तथा अथर्ववेदीय प्रातिशाख्यादि इन प्रातिशाख्य ग्रन्थों का भी भाषावैज्ञानिक महत्त्व है। परन्तु पाणिनीय व्याकरण का महत्त्व सुस्पष्ट है। पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इस पाणिनीय व्याकरण के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। येस्पर्सन महोदय तो भाषाविज्ञान से अधिक व्याकरण को महत्त्व दिये हैं।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते,

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रौत्रमुच्यते।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम्

तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥ पाणिनीय शिक्षा ॥41-42॥

वह पाणिनीय व्याकरण के लिये ‘भाषा—दर्शन’ और ‘विज्ञान’ शब्द का प्रयोग किया है

**“I have not been able to compress in to this volume the whole of my philosophy of speech”** येस्पर्सन महोदय ने यह भी कहा कि भारतीय ही भाषावैज्ञानिक निरीक्षण और वर्गीकरण करने के लिये प्रथम अधिकारी थे— “science presupposes careful observation and systematic classification of facts and of that in the id Greek writers on language we find very little. The earliest masters in linguistic observations and classification were the old Indian grammarians”<sup>6</sup>

आचार्य पाणिनि का ग्रन्थ अष्टाध्यायी है। इस ग्रन्थ में आठ अध्याय हैं, अध्याय विभाजन भी भाषावैज्ञानिक रूप से है। भाषाविज्ञान में जैसे पृथक्—पृथक् स्थान का, पृथक्—पृथक् वर्ग का अध्ययन होता है उसी प्रकार से पाणिनि ने भी अध्ययन किया जैसे— शिक्षा, भाषा, भूगोल, इतिहास, व्याकरण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सैनिक, व्यापारी, कृषक, तथा खलपू, रंगरेज, बढई, पाचक, मोची, ग्वाला, गड़ेरिया, चरवाहा, कुम्हार तथा बुनकर तक अपनी दृष्टि दिया था। द्विचत्वारिंशत् प्रत्याहारों में ही सम्पूर्ण व्याकरण ग्रन्थ का प्रणयन किया। इस ग्रन्थ में महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि इस ग्रन्थ के कुछ संकेतों (सापटवेयर) के सहारे अपने इस कार्य को परिपूर्ण किया यथा— अधिकारसूत्र, अनुवृत्ति, असिद्धि जैसे सपादसप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी असिद्ध होती है इत्यादि। छः तथा सप्त अध्यायों में वैदिक तथा लौकिक संस्कृत का

तुलनात्मक अध्ययन भी महत्वपूर्ण है। पदों में भी तुलना दिखाई देती है जैसे— एङ् प्राचां देशे, इञ् प्राचाम् इत्यादि। चतुर्दश माहेश्वरसूत्र अथवा प्रत्याहारसूत्र हैं। पाणिनीयशिक्षा ग्रन्थ में वर्णों की संख्या भी निर्धारित है।

**त्रिषष्टिश्चतुःषष्टि वर्णां शम्भुमते मताः।**

**संस्कृते प्राकृते चापि स्वयं प्रोक्ता स्वम्भुवा ॥<sup>7</sup>**

भट्टोजिदीक्षित प्रत्याहारसूत्रों को महेश्वर कृत कहते हैं पाणिनिकृत नहीं स्वीकार करते हैं। वहीं दूसरा पक्ष जैसे स्कन्धस्वामी, कुलशेखरर्मा, पुरुषोत्तमदेव, युधिष्ठिरमीमांसक, सृष्टिधराचार्य और मेघातिथि इत्यादि प्रत्याहारसूत्रों को पाणिनिकृत कहते हैं।

वर्णों का उच्चारणस्थान भी निर्धारित है जैसे— अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। इचुयशानां तालु। ऋट्टुरषाणां मूर्धा। लृतुलसानां दन्ताः। उपूध्मानीयामोष्ठौ। जमडणनानां नासिका च। एदैतोः कण्ठतालु। ओदौतोः कण्ठौष्ठम्। वकारस्य दन्तौष्ठम् जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। नासिकाऽनुस्वारस्य।<sup>8</sup> यत्नो द्विधा— आभ्यान्तरो बाह्यश्च। आद्य पञ्चधा, बाह्ययत्नस्त्वेकादशधा। माहेश्वर सूत्रों में वर्णों का विशिष्टक्रम दिखाई पड़ता है। जैसे शुद्ध स्वर अ, इ, उ, ऋ, लृ, अनन्तर ए, ओ, ऐ, औ, मिश्रित स्वरानन्तर अर्द्धस्वर अन्तस्थ य्, व्, र्, ल्, व्यञ्जनों में सर्वप्रथम पंचमवर्ण ङ्, ज्ञ्, ण्, न्, म्, पुनः चतुर्थवर्णाः घ्, झ्, ढ्, ध्, भ्, पुनः तृतीयवर्ण ग्, ज्, ड्, द्, ब्, द्वितीयवर्ण ख्, छ्, ठ्, थ्, फ् प्रथमवर्ण क्, च्, ट्, त्, प् अन्ते ऊष्मवर्ण श्, ष्, स्, ह् आते हैं। जो ध्वनियाँ माहेश्वर सूत्रों में कथित हैं उनके बीच में विकार होता है यथा—

**ध्वनिविकार—**भविता—भवितुम् वा भू—भूवन्।

**ध्वनिलोप—**हतः के स्थान पर घ्नन्ति।

**वर्णविपर्यय—**हिंसेः के स्थान पर सिंहः।

**वर्णागम—**सुधी+उपास्य=सुध्युपास्यः।

यही महाभाष्यकार पतञ्जलि भी स्वीकार करते हैं—“वर्णव्यत्ययापायोपजनविकारेष्वर्धदर्शनात्”<sup>9</sup>

**भाष्य—** वर्णव्यत्यये—कृतेस्तर्कः कसेः सिकता, हिंसेः सिंहः, अपायोलोपः—हतः घ्नन्ति, आगम—लतिता—लवितुम्, विकारः आदेशः घातयति—घातकः।

ध्वनि के परिस्कार के लिये भी कुछ सूत्र हैं जैसे— उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समाहारस्वरितः, अचश्च इत्यादि।

**पदविज्ञान—** अष्टाध्यायी ग्रन्थ में ‘सुप्तिङन्तं पदम्’<sup>10</sup> भाषाविज्ञान में पद को ही दो भागों में विभक्त किया गया है अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व। अर्थतत्त्व अर्थात् धातु होती है। सम्बन्धतत्त्व अर्थात् प्रत्यय होते हैं।

**अर्थविज्ञान—** जब एक धातु के साथ पृथक्—पृथक् प्रत्यय लगते हैं तो अर्थ भी अलग—अलग हो जाते हैं। जैसे गर्ग शब्द से यञ् प्रत्यय जोड़कर गार्ग्यः पद बनता है, इसी प्रकार गर्ग शब्द से ही बहुवचन में जस्, फक् प्रत्यय लगेंगे तो गार्गायणः पद बनता है तो अर्थविस्तार होता है।

मृज् धातु से क्यप् को प्रत्यय जोड़ने से 'मृज्यः' पद बनता है। "(मृजेर्विभाषा सूत्रेण)<sup>11</sup>  
 मृज् धातु से ण्यत् को प्रत्यय जोड़ने से 'मार्ग्यः' पद बनता है।  
 भुज् धातु से ण्यत् प्रत्यय जोड़ने से 'भोज्यम्' (भक्षण) पद 'भोज्यं भक्ष्ये'<sup>12</sup> सूत्र के द्वारा बनता है।

भुज् धातु से ण्यत् प्रत्यय को जोड़ने से 'भोग्यम्' (उपभोग योग्यम् ) पद बनता है।  
 समास तथा कारक के माध्यम से भी अर्थभेद होता है यथा— पञ्चगङ्गम् इत्यादि ।  
 पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है —

**मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।**

**स वाग्वज्रो यजमानो हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।।<sup>13</sup>**

यथा— 'इन्द्रशत्रुः' बहुव्रीहिसमास में पृथक् अर्थ होता है तथा तत्पुरुषसमासे पृथक् अर्थ होता है।

**वाक्यविज्ञानम्— 'एकतिङ् वाक्यम्' ।**

यथा— रामः पठति, अहं पठामि, इत्यादि ।

अतः इन सब प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि पाणिनीय व्याकरण भाषाविज्ञान का स्रोत है। म० म० पण्डितराज आचार्य गोपाल शास्त्री दर्शन केशरी महोदय के द्वारा स्व सम्पादित अष्टाध्यायी ग्रन्थ की भूमिका में कहा है— पाणिनीय व्याकरण के द्वारा न केवल वैदिक तथा लौकिक शब्द का ही ज्ञान होता है अपितु समाजशास्त्र का, भूगोलशास्त्र का, इतिहासशास्त्र का तथा मानवशास्त्र आदि का भी ज्ञान होता है।

**"समाजशास्त्रावगतिर्भवेदितस्तथेतिहासादिनयादि बुद्धयते ।**

**न केवलेयं पदसिद्धिं संहिता विद्वत्सम्पादनसञ्चित्काद्भुता ।।"**

**संदर्भ ग्रन्थ सूची**

- 1— निरुक्त 1/1।
- 2— काव्यादर्श 1/3।
- 3—काव्यादर्श 1/4।
- 4—पा०शि० ।। 6।
- 5— language —Otto Jespersen chapter 1 p-20 .
- 6—पा०शि० ।
- 7—तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् । अष्टाध्यायी 1/1/9।
- 8— महाभाष्य 1/9/2/7/6।
- 9—अष्टाध्यायी । 1/1/14।
- 10—अष्टाध्यायी 3/1/113।
- 11—अष्टाध्यायी ।7/3/69।
- 12—पा०शि० ।52।
- 13—महाभाष्य 2/1/1।

डॉ० श्वेता शुक्ला

प्रवक्ता—संस्कृत

जय नारायण स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,  
सेहरा, करछना, इलाहाबाद।



वेद सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय के दीप्तिपुंज हैं। वेदों की दार्शनिक विचारधारा का प्रमुख अंग अद्वैतवाद है। वेदों में जहाँ एक ओर एकदेवतावाद या एकेश्वरवाद का दर्शन होता है वहीं दूसरी ओर बहुदेवतावाद का भी दर्शन मिलता है। भले ही ऋग्वेद में अनेक देवी-देवताओं की स्तुतियाँ मिलती हैं तथापि वेदों के ऋषि मुख्यतः किसी एक अदृश्य शक्ति के उपासक थे। ऋग्वेद में इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि अनेक देवताओं का स्तुति गान किया गया है। वेदों की अनेक श्रुतियाँ अद्वैतवाद का समर्थन करते हुए परमानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा को एक ही मानती है:—

**इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरयो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।**

**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्याग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।<sup>1</sup>**

अर्थात् उस एक परमात्मा को इन्द्र, मित्र, वरुण कहते हैं। वही आकाश में सूर्य है। वही अग्नि, यम और मातरिश्वा (वायु) है। उस एक सत्य को विप्रजन अनेक प्रकार से कहते हैं। वह सर्वेश्वर भगवान एक ही है, वह एक ही अनेक नामों के द्वारा स्तूयमान होता है। उस एक के अनेक नाम होने पर भी उसकी एकता अक्षुण्य रहती है।

जिस परमात्मा से इस जगत् की उत्पत्ति होती है, जो संसार के समस्त प्राणियों में विद्यमान है जिसका न आदि है और न अन्त वह परमपिता परमात्मा एक है। अतः वेद कहते हैं— हे उपासक जो एक है, उस परम ऐश्वर्यशाली प्रभु की उपासना करो।<sup>2</sup>

वैदिक ऋषियों ने एक ही चेतन शक्ति की उपासना की। यह जो कुछ है, जो कुछ था और जो कुछ होगा वह एक ही पुरुष है— **पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।<sup>3</sup>**

वेदों में उस अद्वैत तत्त्व को आत्मा, निष्काम, आत्मनिर्भर, अपर, स्वयंसिद्ध, आनन्दमय, अनिर्वचनीय, सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापक, शाश्वत और नित्य आदि अनेक विभूतियों से सुशोभित किया है।<sup>4</sup> परमसत्ता का दार्शनिक स्वरूप अद्वैतवाद के सिद्धान्त पर आधारित है:—

**द्विधा इतं द्वीतम् तस्य भावोद्वैतम्। द्विधेतं द्वीतमित्याहुस्तद्भावे द्वैतमुच्यते।<sup>5</sup>**

अद्वैत अर्थात् न द्वैत इति अद्वैत जो दो नहीं एक है। अद्वैत वेदान्ती गोडपादाचार्य ने माण्डूक्य कारिका में कहा है— अनादि माया के कारण अज्ञान की निद्रा में सोया जीव जब प्रबुद्ध होता है, तब उसे अद्वैत का बोध होता है:—

**अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुद्धते। अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा।<sup>6</sup>**

जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य का जो प्रतिपादन अद्वैत वेदान्त बताता है उसका मूल आधार ऋग्वेद है।<sup>7</sup>

**सृष्टि विचार—** ऋग्वेद में हिरण्यगर्भ सूक्त और पुरुष सूक्त द्वारा एकदेववाद की स्थापना की गई। जब प्रश्न यह आता है कि परम पुरुष जो सृष्टि का समस्त चराचर जगत् का आधार सृष्टि का नियामक है वह कौन है? तो वैदिक ऋषि बताता है कि वह परम पुरुष विराट् परमेश्वर हजारों (अनन्त) सिर वाला, हजारों आँखों वाला और हजारों पैरों वाला है जिसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भीतर और बाहर से व्याप्त किया है।<sup>8</sup>

कौन इस बात को वास्तविक रूप से जानता है और कौन इस लोक में सृष्टि के उत्पन्न होने के विवरण को बता सकता है कि यह विविध प्रकार की सृष्टि किस उत्पादन कारण से सब ओर से उत्पन्न हुयी। देवता भी इस विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होने से बाद के हैं। अतः ये देवगण भी अपने से पहले की बात के विषय में नहीं बता सकते इसलिए कौन मनुष्य जानता है जिस कारण यह सारा संसार उत्पन्न हुआ।<sup>9</sup>

जिसका उत्तर पुनः नासदीय सूक्त में मिलता है कि यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस प्रकार के उपादान और निमित्त कारण से उत्पन्न हुयी इसका मुख्य कारण है ईश्वर के द्वारा इसे धारण करना। इसके अतिरिक्त अन्य कोई धारण नहीं कर सकता। इस सृष्टि का जो स्वामी ईश्वर है, अपने प्रकाश या आनन्द स्वरूप में प्रतिष्ठित है। हे प्रिय श्रोताओं! वह आनन्द स्वरूप परमात्मा ही इस विषय को जानता है उसके अतिरिक्त (इस सृष्टि की उत्पत्ति तत्त्व को) कोई नहीं जानता है।<sup>10</sup> इसी प्रकार ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में सृष्टि रचना का चित्रण किया गया है। इस जगत् की उत्पत्ति विराट् पुरुष से बतायी गयी है। उस आदि पुरुष से विराट् यानी ब्रह्माण्ड जगत् उत्पन्न हुआ और उसी से जीवात्मा। उस विराट् पुरुष के साथ देवों ने यज्ञ किया और तब उसके सिर से आकाश, नाभि से अन्तरिक्ष, पैर से पृथिवी, मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, मुख से इन्द्र तथा अग्नि और श्वांस से वायु की उत्पत्ति हुई।

यह सब कुछ दृश्यमान वर्तमान जगत् पुरुष है। जो कुछ हो चुका अर्थात् भूतकालीन और जो कुछ होगा अर्थात् भविष्यकालीन जगत् भी पुरुष है। अर्थात् भूत-भविष्य, वर्तमान सब यही एक पुरुष है।<sup>11</sup>

**आत्म तत्व निरूपण—** वेदों में आत्म तत्व का सूक्ष्म निरूपण किया गया है। ऋग्वेद के ब्रह्म सूक्त में कहा गया है कि आत्मा, अकाम, धीर, अमृत, स्वयंभू और रस से तृप्त है।<sup>12</sup> आत्मा वह है जो सभी में व्याप्त हो। बृहदारण्यक उपनिषद् (2/5/9) में कहा गया है कि 'अयमात्मा सर्वानुभः' अर्थात् सर्वज्ञता आत्मा का गुण है।<sup>13</sup> श्वेताश्वतर उपनिषद् में आत्मा को अन्तर्यामी कहा गया है।

**एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।**

**कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्वा ।।<sup>14</sup>**

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा को अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन कहा है, जो शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मारा जाता है—



न जायते भ्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥<sup>15</sup>

वह परमात्मा धर्म और अधर्म से रहित, कर्म और त्याग से परे, भूत, वर्तमान और भविष्य से भिन्न है।<sup>16</sup> यमराज जब नचिकेता से कहते हैं कि जिस पद और लक्ष्य की महिमा वेद गाते हैं, जिसके लिए मनुष्य सम्पूर्ण तप आदि साधनों का सहारा लेता है, तथा जिसको पाने के लिए साधक ब्रह्मचर्य व्रत का अनुष्ठान करता है वह एक शब्द ॐ है। ये शब्द ही ब्रह्म है यही परम है, जो इसे जान लेता है उसकी सारी इच्छायें पूरी हो जाती हैं। मुक्ति को प्राप्त करने का सबसे ऊँचा साधन है, सबसे बड़ी उपासना है, यह ज्ञान स्वरूप आत्मा है, अजन्मा है, अमर है, सनातन है, नित्य है, पुरातन है। मृत्यु के बाद शरीर की समाप्ति हो जाती है, पर वह सतत् विद्यमान रहता है।

नचिकेता! अगर मारने वाला सोचता है कि मैं मारता हूँ और मरने वाला सोचता है कि मैं मर गया हूँ तो वे दोनों ही अज्ञानी हैं, वे दोनों ही आत्मस्वरूप को नहीं जानते हैं। क्योंकि यह आत्मा न किसी को मारता है और न ही मारा जाता है—

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्। उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥<sup>17</sup>

इसी बात को गीता में भी स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है—

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्। उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥<sup>18</sup>

यह जीवात्मा और परमात्मा एक हैं। इन दोनों के ऐक्य का मूल आधार ऋग्वेद है। वेद, विद्वान या ऋषि मुनि लोग खोज कर रहे हैं और इसको उन्होंने कहा 'नेति नेति' अर्थात् इसका कोई अन्त नहीं। ये कहाँ है, इसका आकार क्या है, इसका स्वरूप क्या है? कोई नहीं जानता। इसका न आदि है न मध्य है और न ही अन्त है। राम अनन्त हैं, वो कोई दशरथ जी के लड़के नहीं बल्कि अनन्त परमात्मा हैं। उनका कोई पार नहीं पा सकता। मुस्लिम धर्म, इसाई धर्म, सिक्ख, बौद्ध, जैनी और अन्य जो हमारे धर्म गुरु हैं कोई उसे अल्लाह, कोई गॉड, कोई वाहे गुरु, कोई भगवान बुद्ध, कोई महावीर तो कोई ईश्वर कहता है।

एक वही सत्य है जिसको श्रेष्ठ जन अनेक रूपों से बोलते हैं। यह ऋग्वेद का नीतिवचन है। वेद, पुराण, उपनिषद् ने उसे एक माना। इस कारणभूत मूल सत्ता को, जिसकी ओर विवेकशील पुरुष की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, वेदान्त में बृहत्, ब्रह्म, शिव, विष्णु और महाकाल आदि नामों से कहा गया है। इस परम तत्त्व के प्राप्त हो जाने पर ज्ञान, कर्म और भाव—प्रवाहों का अन्त हो जाता है। उसी को सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं, एकमेवं, अद्वितीयं, शान्तिमयं, शिवं, आनन्दमयं और अमृतं कहा गया।<sup>19</sup> एक ही परमेश्वर को अनेक रूपों से लोग देखते हैं कोई सगुण तो कोई निर्गुण मान रहा है कोई अद्वैत, कोई द्वैत तो कोई द्वैताद्वैत, कोई विशिष्टाद्वैत, कोई विशुद्धाद्वैत मान रहा है।

ब्रह्म वो है जो संसार के दुःखों का विनाश कर देता है। ऋग्वेद के मंत्रों में ईश्वर को हिरण्यगर्भ और प्रजापति आदि नामों से पुकारते हुए कहा गया है कि सुखस्वरूप और

सुख देने वाले उस प्रजापति परमात्मा की ही समर्पण भाव से भक्ति करनी चाहिए।<sup>20</sup>

मनुष्य निरन्तर इसकी खोज में वनों, पहाड़ों, कन्दराओं में अनेक वर्षों तक तपस्या करता रहता है। गीता में भगवान् कृष्ण ने ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग ये तीन मार्ग बताये। मनुष्य ज्ञान के द्वारा, कर्म के द्वारा, भक्ति के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

ऋग्वेद हमें तृण से लेकर परमब्रह्म तक का ज्ञान कराता है।<sup>21</sup> उसके ज्ञान का मूलभूत सारतत्व यही है कि हे मनुष्य तू स्वयं सच्चा मनुष्य बन तथा दिव्य गुणयुक्त सन्तानों को जन्म दे अर्थात् सुयोग्य मानवों के निर्माण में सतत् प्रयत्नशील रहे। मनुष्य तभी मनुष्य बन सकता है जब उसमें मनुष्यता के गुण विद्यमान हो। यह जो हमारे भीतर चल रहा है वह ईश्वर है, अर्थात् ईश्वर। यही सूक्ष्म रूप से हमारे शरीर में हर जीव में विराजमान है। चाहे वो हाथी हो, घोड़ा हो, कुत्ता हो वह सभी जीवों में विद्यमान है। व्यापक रूप से विचार किया जाये तो विश्व के सभी धर्मों, जातियों के इतिहास में देवत्व की भावना का उद्रेक पाया जाता है। देवत्व की इस सार्वजनीन भावना ने मानव समाज में सभ्यता का सूत्रपात किया। वेदों में अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, सूर्य, उषस्, सरस्वती, वाच् आदि अनेक देवी-देवताओं की स्तुति की गई। वे सभी एक परमसत्ता के प्रतीक हैं।

वैदिक ऋषि पुरुष, ब्रह्म, विराट् आदि नामों का प्रयोग करते हैं जो सामान्य व्यक्ति के लिए अगम्य नहीं है। इनमें मानव के कल्याण के लिए अनुग्रह-परायणता का सहज स्वरूप देखने एवं अनुभव करने को मिलता है। मानव की शक्तियाँ, कर्म, योग और ज्ञान है। जगत् के अधिष्ठान रूप उस परमसत्ता के निर्माता की शक्तियाँ अनन्त हैं, असीम हैं, किन्तु मानव की शक्तियाँ ससीम एवं सान्त हैं। मानव अपने श्रेय (कल्याण) और प्रेय (सुख) के लिए परब्रह्म परमेश्वर की शरण में जाये।

वैदिक ऋषियों ने जगत् के कल्याण के लिए लोकानुग्रह की आकांक्षा की। वैदिक मन्त्र मनुष्य के भद्र तथा कल्याण के लिए निरत है। स्वभाव से अमृताचरण मनुष्य सत्याचरण देवता का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए यजुर्वेद में इस प्रकार प्रार्थना करता हुआ दिखायी देता है:— 'हे व्रतों के पति अग्निदेवता, मैं अमृत को छोड़कर सत्य को प्राप्त करना चाहता है। आपके अनुग्रह से मैं इसको प्राप्त कर सकूँ, यही मेरा व्रत है।'<sup>22</sup>

वैदिक बहुदेवतावाद भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता या बहुत्व में एकत्व का अद्भुत समन्वय है। उनमें तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं की मान्यता न तो कपोल कल्पना है और न ही धर्मान्धता है। यह बहुदेवतावाद विशाल मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय है। तैंतीस कोटि देवताओं की पौराणिक मान्यताओं के सम्बन्ध में भाष्यकार सायण ने लिखा है कि यह उनकी महिमा का प्रताप है। उन सभी का लक्ष्य एक ही परमेश्वर है। (तस्मात्सर्वैरपि परमेश्वर एव ह्युते)। ऋग्वेद<sup>23</sup> और ऐतरेय ब्राह्मण<sup>24</sup> में देवताओं के रूप में एक ही परमेश्वर को अनेक नामों से पुकारा गया है। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल पचपनवें सूक्त के समस्त बाईस मन्त्रों में परमसत्ता का स्वरूप परमेश्वर को सम्पूर्ण देवताओं की एक ही शक्ति के रूप में बताया गया है— महद्देवानां सुरत्वमेकम्।<sup>25</sup>

इस प्रकार उपर्युक्त प्रसंगों के आधार पर यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वेद सम्पूर्ण भारत वर्ष की बौद्धिक एवं वैचारिक उन्नति के मूल स्रोत हैं। वेद अनेकता में एकता स्थापित करते हैं। वेद श्रुति का एक को सर्वत्र और सभी को एक में देखने का यह व्यापक दृष्टिकोण विश्व की किसी अन्य सभ्यता-संस्कृति में देखने को नहीं मिलता।

वैदिक ऋषियों की ऐकेश्वरवाद या अद्वैतवाद की भावना विश्व के सभी धर्म के मानने वालों के लिए ग्राह्य है। वैदिक संस्कृति किसी एक विशेष जाति समुदाय, धर्म संस्कृति के लिए नहीं, अपितु जगत् के सभी मानवों के उद्धार के लिए है। जो मनुष्य से ऊपर, मानव से मानवेत्तर अर्थात् उस परमब्रह्म को सर्वशक्तिमान बताता है कि वह परब्रह्म परमेश्वर ही सम्पूर्ण जगत् का एकमात्र कर्ता है, उसके पूर्व या पर में कुछ नहीं है। इसीलिए कहा गया है कि— एको ब्रह्मद्वितीयो नास्ति।

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद, 1 / 164 / 46
2. य एक इत तमुष्टुहि कृष्टिनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः।। ऋग्वेद, 6 / 45 / 16
3. ऋग्वेद, 10 / 90 / 3
4. वैदिक साहित्य और संस्कृति—वाचस्पति गैरोला, पृ० 196.
5. बृहदारण्यक वार्तिक, 4 / 3 / 1807.
6. माण्डूक्य कारिका, 1.16.
7. ऋग्वेद, 3 / 7 / 14—15.
8. ऋग्वेद, 10 / 90 / 1.
9. ऋग्वेद, 10 / 129 / 6.
10. ऋग्वेद, 10 / 129 / 7.
11. ऋग्वेद, 10 / 90 / 3.
12. ऋग्वेद, 10 / 9 / 44.
13. बृहदारण्यक उपनिषद्, 2 / 5 / 9
14. श्वेताशतरोपनिषद्, 6 / 11.
15. श्रीमद्भगवद्गीता, 2 / 20.
16. कठोपनिषद्, 1 / 2 / 14.
17. कठोपनिषद्, 1 / 2 / 19.
18. श्रीमद्भगवद्गीता, 2 / 19.
19. वैदिक साहित्य और संस्कृति—वाचस्पति गैरोला, पृ. 197.
20. ऋग्वेद, 10 / 121 / 1—9.
21. ऋग्वेद, 10 / 53 / 6.
22. यजुर्वेद, 20 / 21.
23. ऋग्वेद, 1 / 164 / 46.
24. ऐतरेय ब्राह्मण, 3 / 2 / 3 / 12.
25. ऋग्वेद, 3 / 55 / 1—22.

प्रदीप नारायण शुक्ल

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग  
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,  
इलाहाबाद



समस्त भारतीय दर्शनों में योगदर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाभारत में श्री शुकदेव जी कहते हैं कि 'न तु योगमृते प्राप्तुं शक्या सा परमागतिः'। यह एक सुविदित तथ्य है कि भारतीय दर्शन का चरमलक्ष्य प्राणियों को विविध दुःखों से सदा के लिये छुटकारा दिलाना ही है। दुःखों की यह शाश्वतिक निवृत्ति मुक्ति, मोक्ष, कैवल्य, अपवर्ग, निःश्रेयस् निर्वाण और परमपद इत्यादि पदों से अभिहित की गयी है। इसकी सिद्धि के लिये प्रायः सभी भारतीय दर्शन पदार्थों के शुद्धज्ञान को किसी न किसी प्रकार से अपरिहार्य उपाय मानते हैं। श्रुतियों ने भी 'ऋते ज्ञानान् मुक्तिः' का तथ्य स्वीकृत किया है। पदार्थों के इस शुद्धज्ञान को विभिन्न दर्शनों में परमज्ञान, विज्ञान, तत्त्वज्ञान, सम्यक्ज्ञान, परप्रसंख्यान, तत्त्वसाक्षात्कार और विवेकख्याति इत्यादि नाम दिये गये हैं। इस शुद्धज्ञान का एकरूप तो वह है, जो बुद्धि की शुद्ध सात्त्विक-वृत्ति के द्वारा प्राप्त किया जाता है और दूसरा तथा उत्तम रूप वह है, जो वृत्तिहीन स्थिति में आत्मा का अपरोक्ष अनुभव होता है।

'योग' शब्द √युज् समाधौ, √युजिर् योगे तथा √युज् संयमने धातुओं से 'घञ्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ क्रमशः समाधि, जोड़ और संयमन होता है। सांख्ययोगशास्त्र में 'योग' शब्द का अभीष्ट अर्थ समाधि अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध ही स्वीकार किया गया है— 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'<sup>1</sup>। इस सूत्र से स्पष्ट होता है कि योगदर्शन में प्रयुक्त 'योग' शब्द युज् समाधौ धातु से ही निष्पन्न होता है। यह 'योग' शब्द अन्य अर्थों में प्रयुक्त नहीं माना जा सकता, क्योंकि पातंजल योग संयोगरूप न होकर वियोगफलक ही है अर्थात् कैवल्य देने वाला होता है। यह दुःख की निवृत्ति कराने वाला होता है जैसा कि गीता में कहा गया है— दुःखसंयोगवियोगं योगसंगितम्<sup>2</sup>। पतंजलि के द्वारा अनुशासित 'योग' के इसी स्वरूप का सादर निर्वचन करते हुए भोजराज ने कहा है—

पतंजलिमुनेरुक्तिः काप्यपूर्वा जयत्यसौ । पुंप्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो यया ॥<sup>3</sup>

समस्त भारतीय दर्शन मानव जीवन के परमपुरुषार्थ मोक्ष को ही लक्ष्य मानकर प्रवृत्त हुए हैं। योगदर्शन का भी परमलक्ष्य त्रिविध दुःखों की ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक निवृत्ति है। जो सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात दोनों प्रकार के योगों से सिद्ध होती है। वेदान्त को छोड़कर अन्य सभी भारतीय दर्शन ज्ञानजनक योग से परे 'असम्प्रज्ञात' योग की उच्चभूमि तक नहीं पहुँच पाते, जिससे की पुरुष तत्त्व का साक्षात् दर्शन होता है। यह योग वृत्तिज्ञान का अतिक्रमण कराता है, सद्यःमुक्तिप्रद होता है, प्रारब्धकर्मों के संस्कारों का भी तत्काल नाश

करता है और इस प्रकार बौद्धिक ज्ञान का साधन नहीं, प्रत्युत बौद्धिक ज्ञान का साध्य बनता है। इस अद्भूत एवं सर्वातिशायी योग का पूर्ण निरूपण और सविस्तार विवेचन योगदर्शन की अपनी एकान्तिक उपलब्धि है। यह असम्प्रज्ञातयोग ही वस्तुतः राजयोग कहा गया है। इसमें बुद्धि से प्राप्य शुद्ध से शुद्ध ज्ञान का भी अतिक्रमण कर दिया जाता है। यह असम्प्रज्ञातयोग तो साक्षात् मोक्ष की अवस्था होती है। योगदर्शन की इस असामान्य उपलब्धि और असाधारण मोक्षपरायणता के महत्त्व का आकलन करने के लिये गीता की ये पंक्तियाँ पर्याप्त हैं—

**तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।**

**कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।<sup>4</sup>**

योगदर्शन में मोक्ष का नाम 'कैवल्य' अर्थात् परम स्वातन्त्र्य है। 'केवल' शब्द से 'ष्यञ्' प्रत्यय लगकर निष्पन्न 'कैवल्य' शब्द का अर्थ होता है— पूर्णपृथकता, अकेलापन, एकान्तिकता, प्रकृति से आत्मा का पार्थक्य तथा परमात्मा के साथ आत्मा की तद्रूपता, मुक्ति, मोक्ष। इस प्रकार मोक्ष मुक्ति और कैवल्य परस्पर पर्याय हैं। कैवल्य की अवस्था निषेधात्मक नहीं है, बल्कि पुरुष का वह नित्यजीवन है जो प्रकृति के बन्धनों से मुक्त होकर प्राप्त होता है। इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि यह गुणों का पूर्वावस्था को प्राप्त हो जाना है क्योंकि उस समय आत्मा का कोई प्रयोजन नहीं रहता अथवा बुद्धि की शक्ति अपने आप में स्थित होती है—

**पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।<sup>5</sup>**

अर्थात् पुरुषार्थ से रहित (सत्त्वादि तीनों) गुणों का (अव्यक्त में) प्रविलीन हो जाना कैवल्य है, या चितिशक्ति का अपने रूप में प्रतिष्ठित हो जाना ही कैवल्य है। कहने का आशय यह है कि चूँकि गुणों का किसी पुरुष के भोगापवर्ग के सिद्ध कर चुकने के पश्चात् अव्यक्त में विलीन हो जाने को ही कैवल्य कहते हैं, इसीलिये सांख्य-शास्त्र की यह उक्ति भी चरितार्थ हो जाती है—

**तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।**

**संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः।<sup>6</sup>**

अर्थात् कैवल्य बुद्ध्यादि रूप में परिणत गुणों की ही प्रतिप्रसवरूपिणि एक विशेष परिणामधारा को कहते हैं। कैवल्य की उपलब्धि रूपी क्रिया भी पुरुष के द्वारा सम्पादित नहीं की जाती। इस प्रकार पुरुषों का कैवल्य होना केवल उपचार से ही कहा जा सकता है—

**तत्प्रधानस्य कैवल्यं पुरुषविशेष उपचर्यते।<sup>7</sup>**

हिन्दू विचारधारा की अन्यान्य दर्शन पद्धतियों की भाँति, योगदर्शन में भी समस्त इच्छा का कारण वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप का अज्ञान है। शरीर इसी अज्ञान के कारण है। इसका समर्थक चित्त है और इसका विषय सांसारिक सुखोपभोग है। जब तक अविद्या का अस्तित्व है। मनुष्य अपने बोझ को उतारकर नहीं फेंक सकता है और अविद्या का परिहार विवेकज्ञान (विवेकख्याति) के द्वारा होता है। जब मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो सब प्रकार के मिथ्या विचार विलुप्त हो जाते हैं। आत्मा पवित्र हो जाती है और चित्त की

अवस्थाओं से अलिप्त रहती है। गुण भी अवकाश प्राप्त कर लेते हैं, और आत्मा अपने सारतत्त्व में प्रतिष्ठित हो जाती है— तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्<sup>8</sup>

अर्थात् उस समय द्रष्टा (पुरुष) की अपने स्वरूप में स्थिति होती है। वह केवल अपने चिन्मात्र रूप में प्रतिष्ठित रहता है। वह किसी भी पदार्थ का प्रतिसंवेदन उस दशा में नहीं करता। जब असम्प्रज्ञात समाधि सर्वथा सुदृढ़ हो जाती है अर्थात् व्युत्थान की सारी संभावना निर्मूल हो जाती है, तब उस चरमकोटिक अर्थात् पराकाष्ठाप्राप्त असम्प्रज्ञातकाल में चित्त अव्यक्त प्रकृति में लीन हो जाता है और योगी को तत्काल विदेहकैवल्य हो जाता है। यह कैवल्य अज्ञान की निवृत्ति से ही प्राप्त होता है। अविद्या के मिट जाने से संयोग का नाश हो जाता है जिसे 'हान' कहते हैं और वह पुरुष का कैवल्य है—

**तदभावात् संयोगाभावो हानं, तद् दृशेः कैवल्यम्।<sup>9</sup>**

अर्थात् उस अविद्या के नाश से बुद्धि और पुरुष के संयोग का नाश होता है अर्थात् सांसारिक बन्धन की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। यही 'हान' है। वह दृक् शक्ति अर्थात् पुरुष का कैवल्य है। अर्थात् पुरुष का बुद्धि से बिल्कुल अलगाव है या गुणों के साथ फिर से संयोग न होना है और इस हान की प्राप्ति का उपाय विवेकख्याति है—

**विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।<sup>10</sup>**

योगदर्शन इस बात को मानता है कि सब मनुष्य उस आत्मसंयम को पालन करने के योग्य नहीं होते जिस पर कि वह बल देता है। कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में बहिर्मुख कहा जाता है। उनके लिए क्रियायोग का विधान है, जिसमें तपस्या, स्वाध्याय तथा भक्ति (ईश्वर—प्रणिधान) शामिल है— तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।<sup>11</sup>

तपस्या वह है जो क्लेश तथा कर्म के परिणामस्वरूप अन्तस्तल में बैठे हुए अज्ञात संस्कारों समेत समस्त मलों को भस्मसात् कर देती है। योगान्तर्गत मनोविज्ञान की धारणा है कि चेतन मन के अतिरिक्त भी एक अचेतन किन्तु सक्रिय आत्मिक क्षेत्र है, और तपस्या का लक्ष्य इस अचेतन क्षेत्र के विषयों को भी वश में करना है। इस प्रकार योगदर्शन में कैवल्य का विधिवत् विवेचन किया गया है। जब रजोगुण और तमोगुण रूपीमल से रहित सत्त्वात्मक बुद्धि पुरुष की अन्यत्राख्यातिमात्र में प्रतिष्ठित और दग्धक्लेशबीज हो जाती है, तब वह पुरुष की शुद्धि की समता सी प्राप्त कर लेती है। उस समय पुरुष में व्यपदिष्ट भोगों का अभाव होना ही पुरुष की शुद्धि है। बुद्धिसत्व और पुरुष की शुद्धि के समान हो जाने पर 'कैवल्य' होता है—

**सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति।<sup>12</sup>**

अर्थात् सत्त्वप्रधान बुद्धि और पुरुष इन दोनों की शुद्धि की बराबरी हो जाने पर अर्थात् दोनों तत्त्वों के समान रूप से शुद्ध हो जाने पर कैवल्य होता है। बुद्धि और पुरुष दोनों की शुद्धि का स्वरूप क्या है? इसे स्पष्टतः समझ लेना चाहिए। पुरुष की शुद्धि का स्वरूप है उपचरित भोगों का भी अभाव और बुद्धि की शुद्धि का स्वरूप है पुरुष की बुद्धि से

भिन्नता की ख्याति के रूप का होना। इस बुद्धि-शुद्धि और पुरुष-शुद्धि के समान होने पर अर्थात् दोनों के समान रूप से शुद्ध हो जाने पर 'कैवल्य' प्राप्त होता है।<sup>13</sup>

इस प्रकार योगदर्शन में कैवल्य का विधिवत विवेचन किया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् तो योग की मुक्तकंठ से प्रशंसा करती है।<sup>14</sup> गर्भोपनिषद् ने तो जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाने के लिये अर्थात् कैवल्य प्राप्त करने के लिये योगाभ्यास को अद्वितीय साधन के रूप में प्रतिपादित किया है—

**यदि योऽन्याः प्रमुच्येऽहं तत्साख्यं योगमभ्यसे।<sup>15</sup>**

योगदर्शन के इस ज्ञानानुकूल योगसाधना की सर्वग्राह्यता, उपयोगिता, लोकप्रियता एवं सार्वजनीनता सभी दर्शनों में समान रूप से स्वीकृत हुई है। सभी दार्शनिक प्रस्थान ज्ञानजनक योगसम्बन्धी प्रक्रियाओं के प्रसंग में योगदर्शन की मान्यताओं को यथासम्भव स्वीकार करते हैं। अपने इस अप्रतिम वैशिष्ट्य के कारण योगदर्शन भारतीय मनीषा को पुरातन युग से लेकर आज तक समान रूप से अनुप्राणित एवं उद्बोधित करता रहा है।

#### **संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1. योगसूत्र, 1.2
2. श्रीमद्भगवद्गीता, 6.23
3. राजमार्तण्डवृत्ति, पृ० 1
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 6.46
5. योगसूत्र, 4.34
6. सांख्यकारिका, 62
7. मणिप्रभा
8. योगसूत्र, 1.3
9. योगसूत्र, 2.25
10. योगसूत्र, 2.26
11. योगसूत्र, 2.1
12. योगसूत्र, 3.55
13. बुद्धिसत्त्वस्य पुरुषेण सह समाना यदा शुद्धिर्वक्ष्यमाणरूपा विवेकसाक्षात्काराद् भवति तदैव मोक्षो न तत्र सिद्धयपेक्षेत्यर्थः— पातंजलयोगदर्शनम्, पृ० 289
14. न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्। — श्वेताश्वतरउपनिषद् 2/12
15. गर्भोपनिषद्

रेखा त्रिपाठी

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग  
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,  
इलाहाबाद



प्रत्यभिज्ञादर्शन के विचार भारतीय आस्तिक दर्शनों से अधिक सूक्ष्म और विस्तृत हैं। जहाँ आस्तिक-दर्शनों का मूल उद्गम हैं वहीं प्रत्यभिज्ञादर्शन का मूल उद्गम स्थल आगमों को कहा गया है। भगवान् शिव को आगमों का वक्ता कहा गया है। आगम शब्द से अभिप्राय उस ज्ञान से है, जो परम्परा से चला आ रहा है। अतएव आगम वह ज्ञान है जो शाश्वत है तथा सदा से है। आस्तिक दर्शनों में ब्रह्म, प्रकृति और ईश्वर आदि को परमसत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है, परन्तु प्रत्यभिज्ञादर्शन में केवल 'परमशिव' ही परम तात्त्विक सत्ता हैं। सम्पूर्ण सृष्टि परमेश्वर परमशिव में ही अन्तर्निहित है। परमशिव सर्वथा पूर्ण हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शन का मुख्य उद्देश्य भोग के साथ-साथ योग की प्राप्ति कराना है। अतः समन्वयवादी दृष्टि को ध्यान में रखते हुए परमेश्वर की पूर्णता को परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। परमशिव ही आत्मा है और आत्मा व्यापक होती है, इसलिए वह आत्मा पूर्ण है क्योंकि सम्पूर्ण जगत् आत्ममय है और परमप्राप्य लक्ष्य मोक्ष है अर्थात् शिवमय है।

'प्रत्यभिज्ञादर्शन' नामकरण का कारण यह है कि काश्मीर शैवदर्शन की समस्त विचारधारा का सम्पूर्ण कलेवर प्रत्यभिज्ञा निर्मित है। सर्वदर्शनसंग्रह के रचयिता माधवाचार्य ने शैवदर्शन से पृथक् इसे 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' के नाम से ही अभिहित किया है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से देखें तो प्रत्यभिज्ञादर्शन की द्विविध व्युत्पत्तियाँ मिलती हैं—

1. प्रति + अभिज्ञा<sup>1</sup>
2. प्रति + अभि + ज्ञा<sup>2</sup>

यद्यपि दोनों ही व्युत्पत्तियाँ 'पहचान' रूप एक ही अभिप्राय की द्योतक हैं, पर उनकी विधा एवं क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमें अभिज्ञान लौट आया है तथा जो संस्कार सहकृत प्रत्यक्ष ज्ञान का एक भेद है, वह 'प्रत्यभिज्ञा' है, जबकि द्वितीय व्युत्पत्ति प्रथम दृष्टिकोण के परिग्रहणपूर्वक चेतना की पुनः प्राप्तिरूप अभिप्राय को भी स्वयं में समाहित किये हुए है। प्रथम व्युत्पत्ति का सम्बन्ध भारतीय दर्शन की समस्त शाखाओं से है जबकि द्वितीय पर काश्मीर शैव दर्शन का एकाधिकार है। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार प्रत्यभिज्ञा में 'प्रति' उपसर्ग 'प्रतीप' अर्थ में 'अभि' उपसर्ग आभिमुख्य अर्थ में और 'ज्ञा' धातु अवबोधन अर्थ में प्रयुक्त हुई है।<sup>3</sup>

प्रत्यभिज्ञादर्शन में तत्त्वनिरूपण के साथ-साथ तत्त्व प्राप्ति के उपाय का भी विशद वर्णन हुआ है। परमसत्ता परमशिव की प्राप्ति ही इस दर्शन का प्रधान ध्येय है जिसे 'मोक्ष'



कहते हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शन में मोक्ष को आचार्य अभिनवगुप्त ने परिभाषित करते हुए कहा है कि स्वतन्त्र आत्मा के अतिरिक्त मोक्ष कोई भी तुच्छ या अतुच्छ वस्तु नहीं है—

**स्वातन्त्रात्मातिरिक्तस्तु तुच्छोऽतुच्छोऽपि कश्चन।<sup>4</sup>**

आचार्य अभिनवगुप्त और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि— ज्ञेय (कला, तत्त्व, भुवन आदि के मूल में वर्तमान) सत् तत्त्व है, जो कि पूर्णप्रसारस्वरूप वाला है, संकुचित प्रसार स्वभाव वाले तत्त्वों को तिरस्कृत करते हुए जो उस तत्त्व का उत्तरोत्तर (उत्कृष्ट पूर्णप्रसारात्मक) ज्ञान उत्पन्न होता है, वहीं संसार से शान्ति अर्थात् मुक्ति दिलाने वाला है—

**यत्तु ज्ञेयसतत्त्वस्य पूर्णपूर्णप्रथात्मकम्। तदुत्तरोत्तरं ज्ञानं तत्तत्संसारशान्तिदम्।<sup>5</sup>**

जो इदन्तापरामर्शी अवच्छेदों से सभी प्रकार से रहित है, फलतः उसमें कहीं भी अर्थात् किसी भी अंश में अज्ञान नहीं है, प्रत्युत ज्ञेय तत्त्व का पूर्णप्रथात्मक ज्ञान है, वही वास्तविक मुक्ति को प्रदान करने वाला है।<sup>6</sup> यह ज्ञान और अज्ञान शैवदर्शन में पौरुष और बौद्ध भेद से दो-दो प्रकार का है।

**बौद्ध एवं पौरुष अज्ञान का क्षय—**

छः कंचुकों से मलिन (परिमित प्रमाता) अणु में उत्पन्न होने वाले प्रतिबिम्ब से जब “मैं इसे इस प्रकार जानता हूँ”— ऐसी निश्चयात्मिका बुद्धि उत्पन्न होती है, तब उस प्रकार का ज्ञान बौद्ध अज्ञान शब्द से अभिहित होता है। वह पौरुष अज्ञान बौद्ध अज्ञान का पोषणीय अर्थात् कार्य है और उसका कारण भी है। इसके विपरित पशुसंस्कार क्षीण होने पर परमचिदैकात्म्य स्थिति को प्राप्त पुरुष के अन्दर जो विकस्वर निर्विकल्पक विज्ञान उत्पन्न होता है वह ‘पौरुष ज्ञान’ कहलाता है। विकस्वर निर्विकल्पक आत्मज्ञान के औचित्य के कारण बौद्धज्ञान भी है, क्योंकि ये एक-दूसरे के पोष्य और पोषक हैं—

**क्षीणे तु पशुसंस्कारे पुंसः प्राप्तपरस्थितेः, विकस्वरं तद्विज्ञानं पौरुषं निर्विकल्पकम्।**

**विकस्वराविकल्पात्मज्ञानौचित्येन यावता, तद्बौद्धं यस्य तत्पौस्नं प्राग्वत्पोष्यं च पोष्टं च।<sup>7</sup>**

काश्मीर शैवदर्शन में परमेश्वर जब अपने स्वातन्त्र्ये से अपने आपको तीन (आणव, मायीय और कार्य) मलों और छह कंचुकों से आवृत्त करता है, तब वह मायावीय जगत् का जीव (पशु) बन जाता है। जब तक ये मल और कंचुक परमेश्वर को आवृत्त किये रहते हैं तब तक वह देहादि में अहन्तात्मक कर्तृता का अनुभव करते हुए अनेक दुःखों को भोगता है। यह आवृत्त अवस्था उसकी संकुचित प्रमातृता है, जो कंचुकों का परिणाम है, क्योंकि काश्मीर शैव दर्शन के अनुसार जब परमेश्वर अपनी पारमेश्वरी मायाशक्ति अर्थात् अपने स्वातन्त्र्य से अपने स्वरूप को छिपाकर संकुचित प्रमातृता ग्रहण करता है, तब उसकी संज्ञा ‘पुरुष’ हो जाती है— यदा तु परमेश्वरः पारमेश्वर्या मायाशक्त्या स्वरूपं गूहयित्वा सङ्कुचितग्राहकातामश्नुते तदा पुरुषसंज्ञः मायामोहितः कर्मबन्धनः संसारी।<sup>8</sup> इसलिए सकल प्रमाता अर्थात् पुरुष वर्तमान, भूत और भविष्य की क्रमरूपता के अनन्तर सूर्योदय, सूर्यास्त आदि नियत क्रम वाली वस्तुओं के क्रम से भूतकाल आदि की क्रमरूपता में भी मास, दिवस, प्रहर पल आदि की कल्पना करने लगता है। अतः स्वच्छन्द तन्त्र में कहा गया है कि आत्मा के द्वारा आत्मा ही बँधती है—

### आत्मना बद्धयते ह्यात्मा ।<sup>9</sup>

अपने मिथ्याभिमान के वासनारूप शुभ और अशुभ से निबद्ध होकर एक योनि से दूसरे योनि में भटकने वाले जीव को आत्मा और बाह्यात्मा के बीच में स्थित होने के कारण अन्तरात्मा कहा गया है। यही अन्तरात्मा जब ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और महाभूतों से समावृत होता है, तब यह बाह्यात्मा कहा जाता है और ऐसी स्थिति में सदैव विषयों का भोग करता है—

**बुद्धिकर्मेन्द्रियैर्युक्तो महाभूतैः समावृतः । बाह्यात्मा तु सदा देवि भुङ्क्तेऽसौ विषयान् सदा ॥<sup>10</sup>**

अशुद्ध अध्वा में बँधे हुए जीव ही उक्त प्रकार के देहाभिमान से भोगों में अनुरक्त रहते हैं। मुक्त पुरुष में तो देहाभिमान न होने से भोग-विषय की रूचि ही उत्पन्न नहीं होती।<sup>11</sup> इसीलिए वह यह नहीं जान पाता कि नारी को भोग्या बनाकर मैं जिस आनन्द की प्राप्ति के लिए व्याकुल हूँ वह तो पहले से ही मुझ में विद्यमान है, परन्तु आनन्द की शुद्ध दृष्टि शैवागमों में तत्त्वज्ञान उपलब्ध होने पर ही हो सकती है। प्रायः अज्ञान के कारण मनुष्य ऐसा कहता है कि न धर्म है, न अधर्म, स्वर्ग और मोक्ष को किसने प्राप्त किया। सब कुछ मिथ्या है। आचार्य अभिनवगुप्त भी ऐसा ही कहते हैं कि संसार में जो मूढ़ जन लोक-व्यवहार से उत्पादित 'अविद्या' अर्थात् भेदभाव पर आधारित विपरीत ज्ञान को ही अपनाते हैं, वे धर्म और अधर्म के बन्धनों में फँसकर जन्म-मरण के भागी बन जाते हैं—

**लोकव्यवहारकृतां य इहाविद्यामुपासते मूढाः । ते यान्ति जन्ममृत्युधर्माधर्मागलाबद्धाः ॥<sup>12</sup>**

अज्ञान की अवधि में संचित किए कर्म भी बहुत समय से एकत्रित किये गये रूई के अम्बार की भाँति विशिष्ट (शुद्ध) ज्ञान की ज्वाला से जलकर नष्ट हो जाते हैं।<sup>13</sup> प्रत्यभिज्ञादर्शन में जीवात्मा शुद्ध अध्वा में पहुँचकर ही कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है। माया से ऊपर और शुद्ध विद्या से नीचे अर्थात् दोनों के बीच में पहुँचे हुए प्रमाता को 'विज्ञानकेवली' कहते हैं। शुद्ध अध्वा की प्राप्ति ही मनुष्य की मुक्ति है। जीवन को अपनी संविदरूपता का बोध हो जाने पर तो सब कुछ शिवरूप ही हो जाता है—

**दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते । मोक्षायते च संसारो यत्र मार्गः स शाङ्करः ॥<sup>14</sup>**

“प्रत्यभिज्ञादर्शन में मोक्ष (मुक्ति) के द्विविध भेद हैं— जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति।<sup>15</sup> जब साधक को गुरुवचनादि से आत्म-प्रत्यभिज्ञान हो जाने पर परमेश्वर का ऐश्वर्योत्कर्ष अपने ऐश्वर्योत्कर्ष के रूप में हृदयगम होता है, तब ही तत्क्षण वह अपने पारमेश्वर्य के ज्ञान से आनन्दित हो उठता है। परमेश्वर रूप में अपना यह परामर्श ही उसकी पूर्णात्मिका जीवन्मुक्ति कहलाती है। जिस प्रकार इन्द्रजाल का रहस्य जानने वाला स्वयं इन्द्रजाल से मोहित नहीं होता ठीक इसी प्रकार योगी भी आत्मप्रत्यभिज्ञा होने पर पुनः बन्धन में नहीं बँधता। क्योंकि मोक्ष का न कोई निश्चित स्थान है और न ही कहीं अन्यत्र गमन ही है वस्तुतः अज्ञान की गाँठ खोलने से अर्न्तहृदय में चित्शक्ति का विकास होना ही मोक्ष है। जब साधक बाह्यान्तर मन की कल्पना स्थिर करके विचलित नहीं होने दे, तब जीव और ईश्वर दोनों परमात्मा ही हो जाते हैं, क्योंकि संकल्प की कल्पना में जीव और निर्विकल्प दशा में वही ब्रह्म कहलाता है। विकल्परहित स्थिति ही जीवन्मुक्ति है—

सोऽहं ममायं विभव इति प्रत्यभिज्ञानतः। विश्वात्मनो विकल्पानां प्रसरेऽपि महेशता ॥<sup>16</sup>

जब साधक जीवन्मुक्त हो जायेगा तब उसके लिए यह समस्त संसार शून्य हो जायेगा। फलतः ऐसा ज्ञानी जिसका अधकचरा ज्ञान पूर्णतया नष्ट हुआ हो, केवल दूसरे लोगों का उद्धार करने के अभिप्राय से काया में रहता हुआ भी जीवन्मुक्त बना रहता है।<sup>17</sup> अतः जिस व्यक्ति का अपूर्णज्ञान शरीर रहते क्षीण हुआ हो, वह जीते जी ही मुक्त हो जाता है। इसलिए यह मान्यता है कि 'शरीर के रहते बन्धन और न रहने पर मुक्ति है' पूर्णतया तर्कहीन है। परन्तु यह भी सत्य है कि शरीर छूटने पर ही पूर्ण मोक्ष प्राप्त होता है। देहपात के बाद ही जीव का परमेश्वर के स्वरूप से अभेद हो जाने से देह मुक्त होकर शिव बन जाता है—

ततो निवृत्ते प्रयाणप्रातिपर्यन्ते देहे परमेश्वरतैव।<sup>18</sup>

ईश्वरप्रत्यभिज्ञा में भी कहा गया है कि माया ही प्रमाता के संसारी बन्धन का कारण है और ज्ञान से प्राप्त ऐश्वर्य ही मुक्ति है।<sup>19</sup> भास्करी में कहा गया है कि परमेश्वरता की आस्वादसहित तत्त्वदर्शिता जीवन्मुक्ति है और देह विगलन होने पर पूर्णतः परमतत्त्व में लय हो जाना विदेहमुक्ति है।<sup>20</sup> इसप्रकार विदेहमुक्ति जीवन्मुक्ति के अनन्तर ही प्राप्त होती है और जीवन्मुक्ति के बिना उसे दुष्प्राप्य ही कहा गया है। इस प्रकार प्रत्यभिज्ञादर्शन में साधक की सन्देह और विदेह मुक्ति का वर्णन किया गया है।

#### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रतिज्ञता अभिज्ञामिति प्रत्यभिज्ञा। अभिज्ञानरूपे संस्कारसहकारेण जनिते प्रत्यक्षभेदे यथा सोऽयं देवदत्त इत्यादि। पं० तारानाथ—वाचस्पत्यम्।
2. संस्कृत—हिन्दी कोश, वामनशिवराम आप्टे, पृ० 659
3. प्रतिशब्दस्य प्रतीपमित्यर्थः। अभिशब्दस्याभिमुख्यम्। ज्ञाशब्दस्यज्ञानम्। तेन पूर्वज्ञानस्य मध्ये विस्मृतस्य पुनराभिमुख्येन ज्ञानं प्रत्यभिज्ञेति। यथा सोऽयं देवदत्तः। — भास्करी भाग—1
4. तन्त्रालोक, 1/31
5. तन्त्रालोक, 1/32
6. यत्तु ज्ञेयसतत्त्वस्य ज्ञानं स्वात्मनोज्झितम्। अवच्छेदैर्न तत्कुत्राप्यज्ञानं सत्यमुक्तिदम्। — तन्त्रालोक, 1/35
7. तन्त्रालोक, 1/41-42
8. आचार्य क्षेमराज, प्रराप्रवेशिका
9. स्वच्छन्दतन्त्र, भा०—2, पटल—10/360
10. स्वच्छन्दतन्त्र, भाग—2
11. देहाभिमान एव भोगासक्तिजनकः। मुक्तस्य तु तदपायाद् भोगविषयारूचिरेव।— विज्ञानभैरवविवृति।
12. परमार्थसार, कारिका—54
13. अज्ञानकालनिचितं धर्माधर्मात्मकं तु कर्मापि। चिरसंचितमिव तूलं नश्यति विज्ञानदीप्तिवशात्।—परमार्थसार कारिका—55
14. श्रीशिवस्तोत्रावली, 20/12

15. जीवन्मुक्तिमुक्त्वा विदेहमुक्तिं कथयति ।— ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2
16. विज्ञानभैरवविवृति ।
17. एवं प्रक्षीणज्ञानबन्धो ज्ञानीपरानुग्रहार्थं शरीरमपि धारयन्मुक्तः । परमार्थसारटीका
18. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2 ।
19. एष प्रमाता मायान्धः संसारीकर्मबन्धनः ।  
विद्याभिज्ञा पितैश्वर्याश्चिद्घनो मुक्त उच्यते ॥  
— ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, कारिका-3/2/2
20. एतेन जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तयोर्महान् भेदः उक्तः । जीवन्मुक्तिर्हि तत्त्वदर्शित्व- मेवास्वादसहितम्,  
विदेहमुक्तिस्तु तत्त्वे लयः ।— भास्करी भाग-2

डॉ० मधुकर मिश्र

स्थायी निवासी – पूरे ओरीराम मिश्र, आहर बीहर  
पो० अठेहा, प्रतापगढ़, उ०प्र०  
अस्थायी – 2/43, डॉ० ताराचन्द छात्रावास,  
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद



संस्कृत वाङ्मय अगाध है। इस वाङ्मय में समस्त सिद्धान्तों का व्यापक निर्वचन है। प्राचीन ऋषियों-मुनियों ने अपने जिन मन्तव्यों को सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया है उन्हीं मन्तव्यों की व्याख्याएं परवर्ती विद्वान आचार्यों द्वारा निरन्तर गति से की जा रही हैं। साहित्यशास्त्र में अनेक सिद्धान्त जिनका विवेचन आचार्यों ने किया है वे भी पूर्ववर्ती है। साहित्यशास्त्र का ध्वनिसिद्धान्त अत्यन्त गहनीय विषय है।

यद्यपि ध्वनि सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित करने का श्रेय आचार्य आनन्दवर्धन को जाता है तथापि आनन्दवर्धन के पूर्व भी ध्वनि सिद्धान्त की सत्ता थी। आनन्द-वर्धन के पूर्ववर्ती आचार्यों भामह, दण्डी, उद्भट, वामन आदि ने अलंकार, गुण, रीति आदि काव्य तत्त्वों के माध्यम से काव्य के वस्तुपरक, बाह्य अथवा कलापक्षीय सौन्दर्य को ही परखने का प्रयास किया। इन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित अलंकारादि तत्त्व, काव्य के आन्तरिक चमत्कार का उद्घाटन करने में आनन्द वर्धन को सक्षम नहीं प्रतीत हुए। उन्होंने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी सारग्राहिणी सूक्ष्म प्रतिभा से काव्य में ध्वनि नामक तत्त्व का दर्शन कर परवर्ती काव्य शास्त्रियों को नितान्त नूतन दिशा की ओर उन्मुख कर दिया।

आनन्दवर्धन ने ध्वनि तत्त्व के माध्यम से काव्य-सौन्दर्य की आत्मपरक व्याख्या प्रस्तुत कर काव्य में भाव पक्षीय चमत्कार का उन्मीलन किया। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि के द्वारा प्रतिपादित रसतत्त्व को भी ध्वनि तत्त्व में ही अन्तर्भूत करते हुए आनन्दवर्धन जी ने ध्वनि को काव्यात्मा मानते हुए अन्य समस्त काव्य-तत्त्वों को ध्वनि का अंग सिद्ध कर दिया।

ध्वनि तत्त्व की सत्ता संस्कृत वाङ्मय में थी परन्तु आनन्दवर्धन के पूर्ववर्ती आचार्य उस ध्वनि तत्त्व को परिभाषित नहीं कर सके। आचार्य आनन्द वर्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में कहा है कि केवल लक्षण करने वाले ग्रन्थों में तो वही सहृदयाह्लादक काव्य तत्त्व है।<sup>1</sup> उस ध्वनि का स्वरूप समस्त सत्कवियों के काव्यों में अन्तर्निहित और अतिरमणीय है। रामायण, महाभारत आदि लक्ष्य ग्रन्थों में ध्वनि प्रसिद्ध तत्त्व के रूप में व्यवहृत है।<sup>2</sup> 'ध्वनि' शब्द से आनन्दवर्धन का आशय व्यंग्य या प्रतीयमान अर्थ से है।

आनन्दवर्धन द्वारा 'ध्वनि' शब्द द्वारा परिभाषित व्यंग्य अर्थ वेदों, उपनिषदों और समस्त सत्कवियों के काव्यों में होते हैं। वेदों और उपनिषदों में व्यंग्य अर्थ की प्रधानता के रूप में ध्वनि तत्त्व का दर्शन होता है।

**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिष्वजाते ।<sup>१</sup>  
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्त्यो अभिचाकशीति ॥**

संस्कृत साहित्य के अनेक लक्षण-लक्षण ग्रन्थों में इसे उद्धृत किया गया है। उपनिषदों के अनेक मंत्रों में परमतत्त्व का बोध कराने के लिए व्यंजना का आश्रय लिया गया है। कठोपनिषद के एक मन्त्र में 'छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति'<sup>४</sup> कहकर छाया से जीवात्मा और आतप से परमात्मा की व्यंजना करायी जाती है। 'छायातपौ' शब्द के व्यंग्यनिष्ठ होने से सम्पूर्ण मन्त्रलक्षणा मूल पद ध्वनि का स्थल बन जाता है। आदिकवि वाल्मीकि ने अपने ग्रन्थ रामायण की सृष्टि ही रस ध्वनि से की है।

**मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।<sup>५</sup> यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥**

आचार्य आनन्द वर्धन ने तो यहाँ कवि शोकजन्य प्रतीयमान रस को ही ध्वनि माना है। यह रस ध्वनि का अत्यन्त उत्कृष्ट स्थल है क्योंकि इस श्लोक में शोक रूप स्थायीभाव व्यङ्ग्य होने से करुण रस है। इसी प्रकार आदिकाव्य रामायण में वस्तुध्वनि, अलंकार ध्वनि, रसादि ध्वनियों के अधिसंख्य उदाहरण विद्यमान हैं। महर्षि व्यास की कृतियों में भी काव्यसारभूत ध्वन्यात्मक अर्थ का चमत्कार निदर्शित है। महाभारत में ध्वनिकाव्य के अनेक स्थल हैं। शान्ति पर्व का गृध्र-गोमायु संवाद अर्थशक्तिमूल प्रबन्ध ध्वनि के रूप में है। श्रीमद्भगवद्गीता जो कि महाभारत का ही एक अंश है, में भी ध्वनि तत्त्व संसूचित है।

**यां निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।<sup>६</sup> यस्यां जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥**

यहाँ पर निशा, जागर्ति, जागर्ति इत्यादि पदों से मुख्य अर्थ विवक्षित न होने से वाक्यगत अत्यन्ततिरस्कृत वाच्यध्वनि है। महाकवि कालिदास की कृतियों में ध्वनि के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। ध्वनि प्रस्थान के लगभग सभी आचार्यों ने कालिदास के अनेक श्लोक ध्वनि काव्य को लक्षित करने के लिए उद्धृत किये हैं। आचार्य आनन्द वर्धन ने 'द्वित्रा' कहकर वाल्मीकि और वेदव्यास का सम्बोधन किया है, अर्थात् आनन्द वर्धन जी यह मानते हैं कि इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में ध्वनि तत्त्व का विवेचन है।

आनन्दवर्धन के पूर्ववर्ती आचार्यों ने ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य आदि शब्दों का प्रयोग तो नहीं किया परन्तु ध्वन्यमान व्यंग्य अर्थ को किसी न किसी रूप में परखने का प्रयास किया। पण्डितराज जगन्नाथ ने इसी तथ्य की ओर आकर्षित करते हुए यह मत स्थापित किया कि ध्वनिकार से प्राचीन भामह उद्भटादि आचार्यों द्वारा अपने ग्रन्थों में ध्वनि, गुणीभूत-व्यंग्य आदि शब्दों का प्रयोग न करने के कारण आधुनिक विद्वान कहते हैं। कि भामहादि ध्वनि आदि को नहीं स्वीकार करते हैं। यह उक्ति अनुपयुक्त है क्योंकि समासोक्ति, व्याजस्तुति, अप्रस्तुत प्रशंसा आदि अलंकारों के निरूपण द्वारा उसने कई गुणीभूत व्यंग्य के भेदों का प्रतिपादन किया है। भामह इत्यादि आचार्यों द्वारा स्वीकृत अनेक अलंकारों में प्रतीयमान अर्थ

रहता है। किन्तु वह प्रतीयमान अर्थ वाच्य का उपस्कारक मात्र होने से प्रधानता नहीं प्राप्त करता है।

आचार्य भरत ने भी प्रकारान्तर से ध्वनि तत्त्व को मान्यता दिया है। भरत ने कहा है कि आठ स्थायी भाव, तैत्तीस व्यभिचारी और आठ सात्विक भावों के संयोग से काव्यरस की अभिव्यक्ति होती है।<sup>7</sup> काव्यार्थनिष्ठ और विभावानुभावों से व्यञ्जित भावों से रस की निष्पत्ति होती है। सहृदयगण नाना प्रकार के वाचिक आस्तिक और सात्विक अभिनयों से व्यञ्जित स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं। स्पष्ट है कि रसास्वाद, व्यञ्जना के ही माध्यम से होता है। इसीलिए साहित्यशास्त्र के आचार्यों में भरत को ही व्यञ्जना वृत्ति का आदि निर्देष्टा कहा जाता है।

साहित्यशास्त्र में अलंकारों का सर्वप्रथम विवेचन आचार्य भामह ने किया। उनके द्वारा प्रतिपादित अनेक अलंकारों में प्रतीयमान अर्थ की सुस्पष्ट स्थिति झलकती है। आचार्य भामह प्रतिवस्तूपमा अलंकार में आदि शब्द-प्रयोग के बिना भी समान वस्तुओं के विवेचन द्वारा गुणसाम्य की प्रतीति की बात करते हैं।<sup>8</sup> यह गुणसाम्य की प्रतीति वाच्य न होकर व्यंग्य होती है। आचार्य भामह द्वारा प्रतिपादित आक्षेप, पर्यायोक्ति आदि अलंकारों में भी प्रतीयमान अर्थ की स्थिति रहती है।

आचार्य दण्डी के अनेक अलंकारों और गुणों में व्यंग्य की स्थिति होती है। 'उदार' नामक गुण के लक्षण में उत्कर्ष की प्रतीति मानते हैं। यह प्रतीति प्रतीयमान अर्थ का परामर्श कराती है। लक्षण में प्रयुक्त 'प्रतीयते' पद का यही आशय है कि दण्डी जी उदात्त अलंकार के प्रकरण में विद्यमान आशय और विभूति की महत्ता को वाच्य न मान कर व्यंग्य मानते हैं।

आचार्य उद्भट द्वारा 'काव्यालंकारसारसंग्रह' में प्रतिपादित अनेक अलंकारों में प्रतीयमान व्यंग्य अर्थ की सत्ता का सुस्पष्ट आभास मिलता है। पर्यायोक्त अलंकार को लक्षित करते हुए उद्भट कहते हैं कि पर्यायोक्त अलंकार वहाँ होता है जहाँ वाच्य और वाचक के व्यापार से रहित अवगम द्वारा प्रकारान्तर से कोई बात कहीं जाती है।<sup>10</sup>

आचार्य वामन के आक्षेप अलंकार में उपमान का तिरस्कार होने के कारण उपमा की व्यंग्य रूप में स्थिति सुस्पष्ट रहती है। किन्तु ध्वनिवादी वहाँ उपमा की व्यंग्यरूपता को वाच्य के ही चमत्कार का कारण मानता है। आचार्य वामन ने गुणात्मक रीति को काव्यात्मा माना है। गुणों की रसधर्मिता निर्विवाद है। अतः उन्होंने रसध्वनि को परखने का सराहनीय प्रयास किया है। आचार्य, भामह, दण्डी, उद्भट ने रस को स्वतंत्र काव्य तत्त्व न मानकर उसे रसवदलंकार कहकर अलंकार रूप में ही माना है।

इस प्रकार इन आचार्यों ने रस को ही रसवदलंकार मानकर रसध्वनि का ही दर्शन किया है। आचार्य रुद्रट ने रसों की संख्या और स्वरूप का निर्धारण करते हुए उनका सविस्तार प्रतिपादन किया है। उनके रसों को ध्वनिवादी की दृष्टि से रसध्वनि कहने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। आचार्य रुद्रट समासोक्ति अलंकार में समान विशेषण युक्त उपमान के द्वारा उपमेय की गम्यमानता बताते हैं। यह गम्यमानता वाच्य न होकर व्यंग्य होती है।

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्षण कृतामेव स केवलं न प्रसिद्धः लक्ष्ये तु परीक्ष्यमाणे स एव सहृदयाह्लादकारि काव्यतत्त्वम्। (ध्वन्यालोक पृष्ठ संख्या-105)
2. ध्वन्यालोक पृष्ठ संख्या- 37
3. ऋग्वेद - 1/164/20
4. कठोपनिषद - 1/3/1
5. वाल्मीकिरामायण-1
6. भवगद्गीता 2/69
7. अष्टौभावाः स्थायिनः त्रयस्त्रिंशद व्याभिचारिणः अष्टौसात्विका। एते रसाभिव्यक्तिहेतवः (नाट्यशास्त्र भाग 1 पृष्ठ 794)
8. समानवस्तुन्यासेन प्रतिवस्तूपमोच्यते। यथेवानभिधानेऽपि गुणसाम्यप्रतीतितः।। (काव्यालंकार 2/73)
9. उत्कर्षवान् गुणः कश्चिद्यास्मिन्नुक्ते प्रतीयते। तदुदाराह्वयं येन सनाथा काव्या पद्धतिः।।(काव्यादर्श - 1/76)
10. काव्यालंकार सारसंग्रह 4/6



## महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना का ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक विकास में प्रभाव

(इलाहाबाद जिले के विशेष सन्दर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)

**प्रमोद कुमार गुप्ता**

शोध छात्र-अर्थशास्त्र विभाग

शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवां, मध्य प्रदेश  
(सम्बद्ध-अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवां, मध्य प्रदेश)



**सारांश :-** प्रस्तुत शोध पत्र इलाहाबाद जिले में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना का ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक विकास में प्रभाव का एक अध्ययन है। अध्ययन के लिए 300 मनरेगा श्रमिकों का न्यादर्श लिया गया है तथा इसके अर्न्तगत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। शोध से प्राप्त परिणामों में चर पाया गया कि मनरेगा कई अर्थों में दूसरी सरकारी योजनाओं से भिन्न है, इससे ग्रामीण बेरोजगारों को प्रत्यक्ष लाभ पहुंचाया है। इसकी सफलता का सबसे बड़ा साक्ष्य यह है, कि इसके क्रियान्वयन हेतु आवंटित धनराशि में लगातार वृद्धि होती है। मनरेगा से ग्रामीण मजदूरों को रोजगार मिला है, वहीं पैसा आने से गांव के लोगों की क्रयशक्ति भी बढ़ी है, जिससे शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे मूलभूत सुविधाओं का लाभ मिल रहा है। अतः गरीबी जैसे अभिशाप को जड़ से समाप्त करने में सहायता मिल रही है।

**भूमिका :-** आजादी के बाद से सरकार के समक्ष ग्रामीण क्षेत्रों का एकीकृत विकास एक महत्वपूर्ण चुनौती रहा है और इसलिए तदनु रूप ग्रामीण विकास योजनायें भी बनती रही हैं। अभी तक ग्यारह पंचवर्षीय योजनायें पूर्ण हो गई हैं। वर्तमान में बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) अस्तित्व में है। जिसमें ग्रामीण विकास की व्यापक रूपरेखा खींची गई है। नब्बे के दशक से प्रारम्भ उदारीकरण के दौर ने ग्रामीण विकास के समक्ष नई चुनौतियां प्रस्तुत की हैं। भारत के समग्र विकास में क्षेत्रीय असंतुलन भी एक बड़ा रोड़ा बना है। यह सही है कि कोई भी राज्य गरीबी, भूख, कुपोषण, बालमृत्यु से मुक्ति का दावा नहीं कर सकता। सभी राज्य कमोबेश भूख की समस्या से ग्रस्त हैं। लेकिन राज्यों के बीच विकास के सन्दर्भ में क्षेत्रीय असंतुलन चिन्ता का विषय है। इसका नतीजा यह है कि गरीब राज्य गरीब होते गये और सम्पन्न राज्य और सम्पन्न। केन्द्र सरकार के न्यूनतम साझा कार्यक्रम में देश के विकास में गांवों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुये इनके प्रति अपनी वचनबद्धता व्यक्त की है और अपने अग्रगामी कार्यक्रमों में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना को भी शामिल किया है।

**मनरेगा की अवधारणा :-** ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा कार्यान्वित राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम 2005 सरकार के आठ प्रमुख अग्रगामी कार्यक्रमों में से एक है। जो गरीबों के जीवन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है, और व्यापक विकास को प्रोत्साहन देता है। यह अधिनियम विश्व में एक भिन्न प्रकार का पहला अधिनियम है जिसके तहत अभूतपूर्व तौर पर रोजगार की गारन्टी दी जाती है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम 4 सितम्बर 2005 को अधिसूचित किया गया तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना को 2 फरवरी 2006 को देश के 200 पिछड़े जिलों में लागू किया गया। वित्तीय वर्ष 2007-08 में इसका विस्तार 330 जिलों में हो गया अन्ततः 1 अप्रैल 2008 से यह सम्पूर्ण देश में लागू हो गया। इस कानून का बुनियादी सिद्धान्त रोजगार का गारन्टी, जिसके माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र के प्रत्येक परिवार के कम से कम एक सदस्य को एक वित्तीय वर्ष (1 अप्रैल से 31 मार्च) में 100 दिन का गारन्टी युक्त अकुशल मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराने का प्रावधान है। इस योजना के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी राज्य सरकार की है। जिसके लिए केन्द्र सरकार धन उपलब्ध कराती है। कानून की धारा 13 के अनुसार इस योजना के नियोजन एवं क्रियान्वयन की मुख्य जिम्मेदारी जिला, प्रखण्ड एवं ग्राम स्तर के पंचायती राज्य संस्थाओं की है। हांलाकि रोजगार गारन्टी में ग्राम-सभा की प्रत्यक्ष भूमिका है।

**अध्ययन का क्षेत्र एवं उद्देश्य :-** प्रस्तुत शोध पत्र को विश्वयनीय वस्तुनिष्ठ, तथ्यात्मक तथा सूक्ष्म एवं गहनतम् रूप प्रदान करने के लिए उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले के महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना का ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक विकास में प्रभाव (इलाहाबाद जिले के विशेष सन्दर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन) के रूप में प्रस्तावित है। इसका उद्देश्य यह पता लगाना है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार और कम बेरोजगार प्राप्त पुरुषों के लिए यह योजना कितनी लाभान्वित हो रही है, तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार महिलाओं के लिए मनरेगा कितनी लाभान्वित हो रही है। ग्रामीण आर्थिक ढाँचे की मजबूती के लिए दीर्घकालीन रोजगार सृजन करने में यह योजना कितनी सार्थक है। इसके साथ-साथ इस योजना के क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव प्रस्तुत करना है।

**शोध पद्धति :-** प्रस्तुत शोध पत्र के लिये आँकड़ें इलाहाबाद जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना के आर्थिक प्रभाव का अध्ययन शोध प्रविधि के सर्वेक्षण पद्धति के आधार पर किया गया है। जिले में मनरेगा श्रमिकों के पारिवारिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित पारिवारिक स्वरूप, मासिक आय, आय का स्रोत, आवास का स्वरूप, शिक्षा की स्थिति, इत्यादि स्थितियों को जानने का काम किया गया है।

**तालिका- 1.1** पारिवारिक संगठन के आधार पर सूचनादाताओं के पारिवारिक स्वरूप

क्र०सं०	संगठन के आधार पर पारिवारिक स्वरूप	सूचनादाताओं की संख्या	सूचनादाताओं का प्रतिशत
1.	एकल परिवार	225	75%

2.	संयुक्त परिवार	75	25%
		300	100%

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 300 सूचनादाताओं में से 75% एकल परिवार की श्रेणी में आते हैं जबकि 25% संयुक्त परिवार की श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार इलाहाबाद जिले के अधिकांशतः सूचनादाता एकल परिवार से जुड़े हैं।

**तालिका- 1.2 सूचनादाताओं के परिवार की मासिक आय**

क्र०सं०	मासिक आय	संख्या	प्रतिशत
1.	1000-2000 रु०	54	18%
2.	2001-3000 रु०	60	20%
3.	3001-4000 रु०	120	40%
4.	4001-5000 रु०	30	10%
5.	5001-6000 रु०	21	7%
6.	6001-7000 रु०	15	5%
	योग	300	100%

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि, इलाहाबाद जिले के 300 मनरेगा कर्मियों के परिवार की प्रारम्भिक मासिक आय सबसे अधिक प्रतिशत में 3001-4000 रु० 40% तथा सबसे कम 6001-7000 रु० 5% है, जो कि संख्या के आधार पर सबसे कम है।

**तालिका- 1.3 सूचनादाताओं के आय का स्रोत**

क्र०सं०	सूचनादाताओं का स्रोत	सूचनादाताओं की संख्या	सूचनादाताओं का प्रतिशत
1	किसानी	240	80%
2	व्यवसाय	24	8%
3	मजदूरी	30	10%
4	अन्य	6	2%
		300	100%

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सूचनादाताओं के आय का स्रोत सबसे अधिक किसानों से है तथा सबसे कम अन्य तरीकों से है जिसकी संख्या 6 की है।

**तालिका- 1.4 मनरेगा योजना से जुड़ने के बाद सूचनादाताओं की मासिक आय**

क्र०सं०	सूचनादाताओं की मासिक आय का विवरण	सूचनादाताओं की संख्या	सूचनादाताओं का विवरण प्रतिशत में
1	3000-5000 रु०	201	67%
2	5001-7000 रु०	72	24%
3	7001-9000 रु०	27	09%

4	9001—अधिक रु0	00	00%
		300	100%

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि मनरेगा योजना से जुड़ने के पश्चात श्रमिकों की स्थिति में काफी हद तक सुधार हुआ है, तथा आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुयी है। सबसे अधिक संख्या 3000—5000 रु0 तक के श्रमिकों की जो कि 67% तक है। एवं सबसे कम 7001—9000 रु0 तक की है जिसकी संख्या 27 (09%) तक है। पिछली सूचनाओं की अपेक्षा योजना में जुड़ने के पश्चात इस वर्तमान की संख्या सुधार का द्योतक है।

**निष्कर्ष :-** प्रस्तुत शोध पत्र महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना का ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक विकास में प्रभाव से महत्वपूर्ण तथ्यों का ज्ञान प्राप्त हुआ है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अकुशल बेरोजगार युवकों को 100 दिन की रोजगार देने की गारन्टी दी जाती है। इस योजना को पूरे देश में 1 अप्रैल 2008 से लागू कर दिया गया है। इसमें मनरेगा श्रमिकों की पारिवारिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित पारिवारिक स्वरूप, मासिक आय इत्यादि के बारे में जानकारी प्रस्तुत की गयी है। इस योजना के क्रियान्वयन के पश्चात आर्थिक प्रभाव के अन्तर्गत बढ़ी हुई मजदूरी के आमदनी और आर्थिक स्थिति में हुए परिवर्तन से सम्बन्धित जानकारी प्रस्तुत की गई है। निष्कर्ष: मनरेगा के भली-भांति क्रियान्वयन से अब गांव और गांवके लोग खुशहाली और विकास की नई ऊँचाइयों को प्राप्त करने में सक्षम हो रहे है।

**सुझाव :-** महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना की कमियों को दूर करने के लिए अधोलिखित सुझाव अपेक्षित हैं—

महात्मा गाँधी नरेगा योजना को और अधिक सार्थक बनाना आवश्यक है। मनरेगा योजना के उचित क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है कि प्रधान एवं पंचायत सचिव को उचित प्रशिक्षण दिया जाये और योग्य एवं इमानदार ब्यक्ति इस कार्य में लगाये जायें, तथा समय-समय पर सफल क्रियान्वयन हेतु जिले एवं मण्डल स्तर पर जांच करायी जाये।

#### **सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. गैहा आर0 – इम्प्लायमेंट गारन्टी स्कीम नई दिल्ली (2007)
2. ए0 एम0 आर0 अपार्ड – नरेगा हैण्डबुक फार प्रोग्राम आफिसर हैदराबाद (2006)
3. एम0 ओ0 आर0 डी0, मनरेगा एक्ट 2005 रीपोर्ट टू पीपुल मिनिस्ट्री ऑफ रुरल डेवलपमेन्ट, भारत सरकार
4. गुप्ता, एस0 – मेन प्राब्लम्स इन द नरेगा (2005)
5. पी0 ए0 सी0 एस0 – मनरेगा योजना बिहार, नई दिल्ली (2006)

सीतेश्वरी मिश्रा

शोध छात्रा हिन्दी विभाग  
डॉ राम मनोहर लोहिया अवध वि०वि०  
फैजाबाद



“सुन्दर उसी वस्तु को कहा जाता है जो प्रेम की वस्तु हो सके। जिस वस्तु के प्रति प्रेम न हो वह सुन्दर नहीं हो सकती अथवा कोई सुन्दर वस्तु बिना प्रेम की वस्तु बने रह ही नहीं सकती।”<sup>1</sup> विद्यापति के काव्य में प्रेम सबसे बड़ी प्रेरणा है। वे पूर्णतः प्रेम के कवि थे सौन्दर्योपासक कवि बिना प्रेमी हुए नहीं रह सकता। अतः सौन्दर्य की परिभाषा भी यही है। विद्यापति की रूपासक्ति की विवेचना करते हुए निराला जी ने लिखा है कि—“विद्यापति सौन्दर्य के स्रष्टा भी जबरदस्त थे और सौन्दर्य में तन्मय हो जाने की शक्ति भी उनमें अलौकिक थी। कवि की यह बहुत बड़ी शक्ति है कि वह विषय से अपनी सत्ता को पृथक रखकर उसका विश्लेषण भी करें और अपनी इच्छानुसार उसमें मिलकर एक भी हो जाये।”<sup>2</sup> प्रेम मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। संसार के कई महापुरुषों के जीवन में इस प्रेम ने ही प्रेरणा का कार्य किया है। गिलबर्ड मरे ने लिखा है कि सौन्दर्य वह है जो देखा जाकर प्रेम का विषय बनता है। प्रेम मनुष्य की वैयक्तिक सम्पत्ति है। किन्तु यह प्रेम जब कविता या कला के माध्यम से व्यक्त होता है तो सार्वजनिक हो जाता है। प्रसिद्ध कवि दान्ते इस प्रेम को अपने जीवन की सबसे बड़ी प्रेरणा शक्ति मानता है। इस प्रकार राधा और कृष्ण के महान प्रेम को समझने के लिए हमें विद्यापति के उस विश्वास को समझना होगा जिसे उन्होंने प्रेम में अर्जित किया था। प्रेम के विषय में विद्यापति का विचार उच्च कोटि का है। वे आंगिक मिलन के सुख की भी कम अभ्यर्थना नहीं करते। किन्तु यह सब शरीर व्यापार है, प्रेम यहीं तक सीमित नहीं है। कवि कहते हैं कि प्रेम तो फूल का पौधा है। इस फूल को गोपाल ने लाकर फुलवारी में लगाया है। प्रेम पूर्ण वार्ता के जल से सींचा गया और एक दिन इसमें अभिनव प्रेम का पुष्प फूला।

“फूल एक फुलवारी लाओल मुरारी / जतने पटाओल सुवचन वारि

चौदिस वान्हल सीलक आरि / जिवे अवलम्ब करु धारि

तहु फुलल फूल अभिनव प्रेम / उस मुल लहए न लाखहु हेय”<sup>3</sup>

मैथिली कोकिल कवि विद्यापति की काव्य रचनाओं में मुख्य रूप से दो तत्त्वों की प्रधानता परिलक्षित होती है— (1) प्रेम तत्त्व (2) सौन्दर्य तत्त्व। वस्तुतः विद्यापति के काव्य रचनाओं का स्वर ‘जयदेव’ के ‘गीत-गोविन्द’ से प्रभावित है। क्योंकि श्रृंगार के

जिस कोमल अभिव्यक्तियों की अभिव्यक्ति जयदेव जी के गीतगोविन्द में परिलक्षित होती है वही प्रवृत्ति का प्रकाशन हमें विद्यापति की रचनाओं में भी दृष्टिगोचर होती है। अपने गीतों के माधुर्य और कोमलकान्त पदावली के कारण विद्यापति बहुचर्चित कवि रहे हैं। डॉ० ग्रियर्सन ने इनके गीतों की प्रशंसा के बारे में कहा है कि—“विद्यापति के गीतों के माधुर्य की प्रशंसा उनके पाठक जैसे ही करते हैं जैसे सॉलमन के गीतों की प्रशंसा उसके पादरी करते हैं।” इससे विद्यापति के गीतों की माधुर्य भावना के हृदयग्राही स्वरूप का पता चलता है।

प्रेम तत्त्व की दृष्टि से निश्चय ही विद्यापति की रचनाओं का अन्यतम स्थान है। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने विद्यापति की पदावली में प्रेम तत्त्व के बारे में कहा है—“पदावली में तो ऐसा जान पड़ता है कि विद्यापति प्रेमी-प्रमिकाओं मात्र को कृष्ण-राधा के रूप में परिकल्पित करते हैं। जहाँ सच्चा प्रेम है वहाँ राधा और कृष्ण ही आश्रय-आलम्बन है।”<sup>4</sup> वस्तुतः विद्यापति ने प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों में किया है। संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत विद्यापति ने आलम्बन की चेष्टाओं और विभिन्न मुद्राओं का बड़ी ही सजीव, सांगोपांग एवं भावपूर्ण वर्णन किया है। डॉ० राम किशोर शर्मा ने कहा है कि—“पदावली सरस गीतिपरक रचना है। इसमें संयोग और वियोग श्रृंगार की मार्मिक अभिव्यंजना की गयी है। राधा और कृष्ण के प्रेम चित्रण में कवि किसी बंधन को स्वीकार नहीं करता। इसमें वयः सन्धि, नख, शिख अभिसार, मान आदि का खुलकर चित्रण किया है।”<sup>5</sup> संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत नायिका के समीप नायक की उपस्थिति सदैव बनी रहती है। अतः संयोग श्रृंगार के वर्णन में विद्यापति की बहिरंग प्रतिभा का प्रधान्य है और अप्रस्तुत योजना की कलात्मकता निश्चित रूप से सराहनीय है। सच बात तो यह है कि संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत उन्होंने हाव-भाव और कायिक चेष्टाओं का बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। दूसरे शब्दों में विद्यापति के संयोग वर्णन में मूर्तविधान कल्पना तत्त्व की प्रधानता रही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि—“विद्यापति के पद अधिकतर श्रृंगार के ही हैं, जिनमें नायिका और नायक, राधा-कृष्ण है। इन पदों की रचना जयदेव के गीतकाव्य के अनुकरण पर ही शायद की गई हो। इनका माधुर्य अद्भुत है। उन्होंने इन पदों की रचना श्रृंगार काव्य की दृष्टि से की है।”<sup>6</sup>

विद्यापति ने संयोग श्रृंगार के तहत अपनी उस सौन्दर्य दृष्टि का विनियोग किया है। जिसके कारण कृष्ण काव्य परम्परा में उनकी अति प्रसिद्धि है। विद्यापति सूर की तरह राधा और कृष्ण के मोहिनी सौन्दर्य पर निछावर नहीं होते वरन् एक सीमित दायरे में उन्होंने सौन्दर्य निरूपण की दृष्टि से प्रस्तुत के मेल में ही अप्रस्तुत योजना का सफल प्रयास किया है।

विद्यापति सौन्दर्योपासक कवि थे सौन्दर्य को उन्होंने देखा था अनुभव किया था। वे सौन्दर्य के वायवी रूप के प्रति आकृष्ट होने वाले रहस्यवादी कवि नहीं थे वरन् सौन्दर्य को बिल्कुल करीब तथा साक्षात् रूप में देखने के अभ्यासी थे। सौन्दर्य ही

उनका दर्शन है तथा यही जीवन दृष्टि भी है। सौन्दर्य को उन्होंने नाना रूपों में देखा ही नहीं था वरन् एक कुशल शिल्पी की तरह उसे चुना, सजाया, संवारा तथा आलोकित किया था। वे इसके स्वागत के लिए तैयार रहते थे। वस्तु का गुण वस्तु में नहीं उसको पहचानने वालों की आँखों में होता है। उनके पास वे आँखें थी, वह अणु-वीक्षण यन्त्र था। जिसकी सीमा में आकार रूप का एक अणु भी उनकी दृष्टि से नहीं बच सका। सौन्दर्य को वे 'अपरूप' कहते थे। अपरूप जो मनुष्य के मन में पुलक, प्राणों में शक्ति और शरीर में रोमांच भर दे। उन्होंने अपरूप या सौन्दर्य की अपूर्णता को एक सजीव पदार्थ के रूप में ग्रहण किया है। इस सौन्दर्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी चिरनवीनता है। वह सदैव नवीन रूप में आता है। वे राधा और कृष्ण के रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस 'अपरूप' ने सारे संसार को वश में कर लिया है यह किसी के चित्र को चंचल कर सकता है—

**"सुधामुखि के विधि निरमल बाला**

**अपरूप मनोमय मंगल / त्रिभुवन विजयी माला।"**

इस सौन्दर्य का प्रभाव विश्वव्यापी है जो भी इसके सम्पर्क में आता है वह ही सुन्दर हो जाता है। जायसी के 'पद्यावत' में पद्मावती का सौन्दर्य पारस-रूप है और उसके इस दिव्य रूप के स्पर्श मात्र से ही सभी वस्तुएं अभिनव सौन्दर्य धारण करती हुए दिखाई पड़ती हैं। विद्यापति की राधा भी वह अपूर्व सौन्दर्य मणि है जिसकी प्रभा से सभी पदार्थ प्रकाशित होते हैं —

**"जहाँ-जहाँ पग-जुग धरई, तँहि-तँहि सरोरूह भरई**

**जहाँ-जहाँ झलकत अंग, तँहि-तँहि बिजुरि तरंग**

**कि हेरल अपरूप गोरि, पइठल हिय माँहि भोरी।।"**

बिहारी आदि की तरह विद्यापति की सौन्दर्य कल्पना या चित्रोद्भावना वस्तुन्मुखी नहीं है। इनकी दृष्टि सौन्दर्य तत्त्व के निरूपण में आन्तरिक स्पर्श से पूर्णतः प्रभावित है। अर्थात्-सौन्दर्य के जिन तत्त्वों का वे रेखांकन करते हैं उनमें उनकी दृष्टि पहले हृदय की ओर जाती है पुनः रूप का आश्रय ग्रहण करती है। इसी कारण कविवर विद्यापति के सौन्दर्य चित्र अधिक आकर्षक मार्मिक एवं हृदयाग्राही बन गये हैं। हृदय को प्रभावित करने वाली उक्ति भंगिमा के कारण ही इनका सौन्दर्य कभी विकृत नहीं होता। सौन्दर्य लेखन पर इनकी दृष्टि सदैव सजग रहती है—

**"सरस बसन्त समय भल पावलि, दखिन पवन वह धीरे।**

**सपनेहु रूप वचन इक भाषिय, मुख से दूरु करु चीरे।।**

**तोहर बदन सम चाँद न अथ, कइयों जतन विहि केला।**

**केतेत बेर बिहि काट बनाओल नव कै, तयो तुलित नहिं भेला।।"**

विद्यापति की सौन्दर्य दृष्टि जहाँ एक ओर नायिका के बाह्य सौन्दर्य निरूपण को लेकर विकसित होती है। वही दूसरी ओर उनकी सौन्दर्य दृष्टि का प्रसार एवं उन्मेष प्रकृति के सौन्दर्य, मनोरम दृश्यों के अन्तर्गत प्रतिभाषित हुआ है। विद्यापति ने

षड् ऋतुओं का पारम्परिक रूप से वर्णन नहीं किया है किन्तु बसन्त और पावस जैसी ऋतुओं का वर्णन या सौन्दर्य चित्र जिसका निरूपण हुआ है वह अपने आप में अप्रतिम तथा सहृदय संवेद्य है। जैसे—

“अभिनव पल्लव बइसक देल । धवल कमल फुल पुरहर भेल ।।  
करु मकरंद मंदाकिनि पानि । अरुन असोग दीप दहु जानि ।।  
माई है आज दिवस पुनमंत । करिए चुमाओन राय बसन्त ।।”<sup>10</sup>

विद्यापति की सौन्दर्य दृष्टि वस्तु परिगणना तक ही सीमित न रहकर प्रकृति को मानवीय संवेदना से सम्यक रूप से जोड़ने का भरसक प्रयास किया है। पावस तथा बसन्तादि के चित्रण में प्राकृतिक दृश्यों का निरूपण करने में कहीं मानवीकरण की प्रवृत्ति है तो कहीं मिथिला की शस्य—श्यामला दृश्य और नयनाभिराम चित्रण करने में सफल हुए हैं। पावस के चित्रण में कवि का चाक्षुष बिम्ब सराहनीय है। प्रकृति के यथा तथ्य निरूपण में भी कवि की निरीक्षण शक्ति प्रशंसनीय है। बादलों की गर्जना, वज्रपात, घोर वर्षा तथा अंधकार के दृश्यों का जैसा चित्र कवि ने अपने काव्य में उकेरा है वह अद्वितीय है। प्रकृति का वर्णन विद्यापति के काव्य में गौण है, मुख्य है उसका उद्दीपन रूप। विद्यापति ने इस प्रकार के वर्णनों में अपनी निरन्तर जागरूकता, सूक्ष्मदर्शिता तथा संवेदनशील दृष्टि का बहुत सुन्दर परिचय दिया है। कवि ने वर्षा के साथ घटित घटनाओं, बादलों की गर्जना संज्ञा मन्तमयूर की आवाज से उत्पन्न ध्वनियों को शब्दों में पिरोकर विरहिणी—हृदय की विभिन्न परिस्थितियों से उनकी तुलना करके सम्पूर्ण प्रकृति को व्यक्ति के दुःख में लय कर दिया है —

“ससि हे हमर दुखक नहिं ओर / ई भर बादर माह भादर, सून मंदिर मोर  
झांपि घन गरजन्ति सन्तत / भुवन भर बरसन्तिया  
कन्त पाहुन काम दारुण / सघन खर सर हन्तिया ।।”<sup>11</sup>

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने लिखा है—“काम—भाव और शरीर का सौन्दर्य उनके यहाँ उत्सव—रूप में है। इसीलिए चिर—परिचित होते हुए भी चिर—नवीन हैं।”<sup>12</sup> विद्यापति के सौन्दर्य चित्रण के विषय में डॉ० राम किशोर शर्मा जी कहते हैं कि —“रूप सौन्दर्य या आंगिक सौन्दर्य की सूक्ष्म छवि को उभारते हुए वह मात्र संवेदनशील दृष्टा तथा स्रष्टा की भूमिका का निर्वाह करता है।”<sup>13</sup> उद्दीपन के रूप में प्रकृति के उपकरणों के प्रयोग से मानवीय दुःख की इतनी तीव्र व्यंजना शायद ही कोई कवि कर सका है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि विद्यापति ने इस सौन्दर्य रूपों को अपने स्वनेत्रों से देखा था चूँकि मिथिला से हिमालय की समीपता का वर्णन बहुत से कवियों ने किया है किन्तु विद्यापति के पावस विषयक चित्रण को देखने से प्रतीत होता है कि हिमालय की चोटियों से भाप भरे बादलों से कैसे वृष्टि होती है, इसका सर्वांगीण दृश्यावलोकन इन्होंने निश्चय ही किया होगा।

संयोग श्रृंगार की तरह विद्यापति ने प्रेमतत्त्व विवेचन में वियोग श्रृंगार का सजीव वर्णन किया है। “संयोग के वर्णन में जहाँ विद्यापति मिलन की नाना मुद्राओं के मादक



वर्णन से अपने काव्य में आनन्दातिरेक से भर देते हैं वहीं विरह के दिनों में सारी सृष्टि को आठ-आठ आँसू रूलाने की क्षमता भी रखते हैं।<sup>14</sup> इनके विरह के गीत इनकी अन्तरात्मा की आवाज है। विद्यापति के विरह गीत इतने कारुणिक और व्यथा से भरे हैं कि उन्हें एकमात्र भोग के गीत कहना अनुचित होगा। उनके काव्य में नायिका विरह से पीड़ित है अपने प्रियतम कृष्ण को ना पाकर राधा की स्थिति बहुत दयनीय हो गयी है। वह कहती है -

**“सखि हे कतहु न देखि मधार्ई ।  
काँप शरीर धीर नहीं मानस अबधि नियर भेल आई ।  
माधव मास तीथिभयो माधव अबधि कइएपिआ गेला ।  
कुच जुग संभु परसि कर बललन्हि, वे परतीति मोहि भेला।”<sup>15</sup>**

“राधा के विरह में सचमुच विद्यापति अपना हृदय निकाल कर ही रख दिया है। यह विरह पीड़ा इतनी अनन्त-व्यापिनी और इतनी शुभेच्छापूर्ण है कि इसकी बराबरी का कोई और वर्णन कठिनाई से प्राप्त होगा।<sup>16</sup> विद्यापति ने वियोगान्तर्गत नायिका के मनःस्थितियों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वर्णित किया है यही नहीं विषाद आवेग आदि मनोभावों का वर्णन मानसिक धरातल पर करते हैं। इनके यहाँ वियोग वर्णन में संवेदनशीलता तथा अनुभूति प्रवणता की प्रधानता है। इन्होंने वियोग का उभय पक्षीय वर्णन किया है। अर्थात् नायिका के वियोग के साथ-साथ नायक के वियोग पर भी विचार किया है और उसके अन्तर्गत प्रेम व्यंजना के उत्कर्ष का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया।

विद्यापति के प्रेम व्यंजना में सप्राणता तथा सजीवता है। उन्होंने ऐसे चित्रों की अवतारणा नहीं की है जो निष्पन्द अथवा निष्प्राण है। कहने का तात्पर्य यह है कि रीतिकालीन बिहारी आदि कवियों की तरह वियोगानुभूति के वर्णन में उन्होंने ऊहात्मक प्रवृत्तियों को महत्ता नहीं प्रदान की है और यह भी सत्य है कि विद्यापति के समय तक फारसी काव्य परम्परा में आगत ऊहात्मक प्रवृत्ति तब तक इनकी रचनाओं में नहीं आ सकी थी। यह प्रवृत्ति तो विदेशियों के साथ ही आई।

विरह वर्णन के लिए कवि ने बारहमासा पद्धति का प्रयोग किया है। इनके बारहमासा का प्रारम्भ आषाढ़ से शुरू होता है। आकाश में मेघ जलभार से झुके आ रहे हैं विरहिणी का प्रिय इस दारुण ऋतु में न जाने कहाँ है उसे कुछ पता होता तो विरहिणी बनकर खोजने निकल पड़ती है-

**“मास आसाढ़ उनत नव मेघ, पिया विसलेखे रहओ निरथेघ।”<sup>17</sup>**

विद्यापति के विरहिणी का व्यक्तित्व अधिक आकर्षक है। डॉ० शिव प्रसाद सिंह ने कहा है कि-“कवि ने विरहिणी के मुख से निकलने वाले शब्दों में निहित पीड़ा को पहचाना है। विरहिणी नायिका छाती फटने की व्यंजना कई शब्दों में भिन्न तरह कर सकती है।<sup>18</sup> इसका कारण है कि वह सच्चे अर्थों में एक गृहणी है और उसके वियोग का प्रसार सूर्यादि की गोपियों की तरह नहीं हुआ। इस दृष्टि से इनके वियोग में अधिक

तन्मयता प्रभविष्णुता और मर्मस्पर्शिता है। निश्चय ही विद्यापति की वियोगिनी गृहणी होने के कारण आशा-वादी विचार करते हैं। वह पति को यदि उपालम्भ देती है तो बहुत ही संयत और शालीन शब्दों में एक स्थल पर अपनी मनोव्यथा की व्यंजना विद्यापति की वियोगिनी ने ऐसी की है।

“अंकुर तपन ताप यदि जारब, कि करब बारदि मेह।

ई नव जोबन विरह गमाओव कि करब से पिया गेह।”<sup>19</sup>

अतः स्पष्ट है कि विद्यापति संयोग तथा वियोग दोनों की दृष्टियों से पर्याप्त सफल कवि रहे हैं और उनका सौन्दर्य विधान केवल वस्तुगत न होकर आत्मगत भी है। यह स्वभाव है वैशिष्ट्य विद्यापति की विरहिणी के आत्मकथन से स्वतः प्रकट होता है। इस तरह निष्कर्ष रूप से यह कह सकते हैं कि विद्यापति वास्तव में प्रेम और सौन्दर्य के कवि, एवं गायक थे।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० शिव प्रसाद सिंह—विद्यापति, पृ० 27
2. निराला—विद्यापति और चण्डीदास, प्रबन्ध प्रतिमा, प्रथम संस्करण, पृ० 151
3. डॉ० शिव प्रसाद सिंह—विद्यापति, पृ० 265
4. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी—हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 34
5. डॉ० राम किशोर शर्मा—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 92
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 37
7. स०रामवृक्ष वेनीपुरी विद्यापति पदावली पृ० 112
8. स०रामवृक्ष वेनीपुरी विद्यापति पदावली पृ० 128
9. स०रामवृक्ष वेनीपुरी विद्यापति पदावली पृ० 215
10. डॉ० शिव प्रसाद सिंह—विद्यापति पृ० 269
11. स०डा० राममूर्ति त्रिपाठी विद्यापतिका पृ० 109
12. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी—हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 34
13. डॉ० राम किशोर शर्मा—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 92
14. डॉ० शिव प्रसाद सिंह—विद्यापति पृ० 31
15. स०रामवृक्ष वेनीपुरी विद्यापति पदावली पृ० 165
16. डॉ० शिव प्रसाद सिंह—विद्यापति, पृ० 135
17. स०रामवृक्ष वेनीपुरी विद्यापति पदावली पृ० 65
18. डॉ० शिव प्रसाद सिंह—विद्यापति, पृ० 43
19. स० डा० राममूर्ति त्रिपाठी विद्यापतिका पृ० 110

डॉ. देवेन्द्र कुमार

खालसा कॉलेज, गढ़दीवाला  
होशियारपुर, पंजाब।



वर्तमान युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। सूचना प्रौद्योगिकी के कारण आज सम्पूर्ण विश्व एक ग्राम बन गया है। सूचना प्रौद्योगिकी ने सम्पूर्ण विश्व में एक छोटे से यंत्र में समेट दिया है। इसके बढ़ते प्रभाव से संसार का कोई भी क्षेत्र कोई भी कार्य अछूता नहीं रह गया है। वस्तुतः सूचना प्रौद्योगिकी ने सर्वाधिक लाभ अर्थव्यवस्था को पहुंचाया है तथापि ज्ञान-विज्ञान का कोई भी विषय और क्षेत्र इसके प्रभाव से अप्रभावित नहीं है। सूचना प्रौद्योगिकी ने जहां विज्ञान के विषयों को नई संभावनाएं प्रदान की हैं वहां मानविकी विषयों को भी न्यूनाधिक प्रभावित किया है। क्या अर्थविज्ञान, क्या राजनीति विज्ञान, क्या समाजशास्त्र और क्या भाषा और मानविकी, सभी ज्ञानानुशासन सूचना-प्रौद्योगिकी से न्यूनाधिक लाभान्वित हुए हैं। अनुसंधान के क्षेत्र में भी सूचना-प्रौद्योगिकी ने अनुसंधित्सुओं को असीम संभावनाएं और सफलताएं प्रदान की हैं। एक क्लिक पर ढेर-सी जानकारियां हमारे सामने उपस्थित हो जाती हैं और हम संदर्भ, प्रसंग तथा आवश्यकता के अनुसार उसका लाभ उठाते हैं। विभिन्न ज्ञानानुशासनों में हो रहे शोध कार्य में तो सूचना-प्रौद्योगिकी ने निस्सन्देह नए क्षितिज खोले ही हैं, हिन्दी अनुसंधान भी इससे अछूता नहीं रहा है। यद्यपि आज इसका प्रयोग और प्रचलन कम है तथापि यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि भविष्य में संभावनाएं बेशुमार हैं। हिन्दी अनुसंधान में सूचना-प्रौद्योगिकी के प्रयोग और संभावनाओं पर चर्चा करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि हिन्दी अनुसंधान और सूचना-प्रौद्योगिकी के सामान्य और अवधारक अर्थ क्या हैं? इनका प्रयोग किन अर्थों में किया जाता है।

डॉ. जोगेश कौर के अनुसार, "जिज्ञासा की तृप्ति और समस्याओं के समाधान के लिए मानव-मात्र में शोध की सहज-वृत्ति उपलब्ध है। यही शोध-वृत्ति जब सुनियोजित और अनुशासित होकर क्रियाशील बनती है तब ज्ञान के विविध क्षेत्रों में नए तथ्यों का नया आविष्कार होता है। इसके द्वारा मानव का प्रगति रूप तो प्रशस्तर होता ही है, सभ्यता और संस्कृति का स्वरूप भी अधिक निखरता है।"<sup>1</sup> स्पष्ट है कि शोध अथवा अनुसंधान मानव की जिज्ञासाओं की तृप्ति के समाधान की सहज प्रवृत्ति है और यह मानव को उन्नत करती हुई सभ्यता/संस्कृति के स्वरूप को भी निखारती है। वस्तुतः अनुसंधान कार्य अज्ञात-कार्य को ज्ञात बनाने के साथ-साथ ज्ञात कार्य को पुनर्विवेचित करके स्पष्ट बनाने और व्यवस्थित

करने की कला है। अनुसंधान भी एक कला है जिसके अन्तर्गत ज्ञान के ज्ञात-अज्ञात तथ्यों की खोज और उनका विश्लेषण करके सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है।

अनुसंधान शब्द की व्युत्पत्ति 'धा' धातु के साथ 'अनु' तथा 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'ल्युट' (अन) प्रत्यय से हुई है। 'धा' का अर्थ है रखना, धारण करना या स्थिर करना। इस प्रकार इसका लाक्षणिक अर्थ निकलता है—किसी वस्तु अथवा विषय पर दृष्टि रखना अथवा दृष्टि केन्द्रित करना। "अनुसंधान शब्द का विश्लेषण 'अनु-संधान' के योग की प्रक्रिया द्वारा भी किया जा सकता है। संधान का अर्थ है—लक्ष्य निर्धारित करना, निशाना लगाना, शोध के क्षेत्र में अप्राप्त परन्तु अस्तित्ववान् तथ्यों का पुनः नवीन दृष्टि से विश्लेषण करके सर्वग्राह्य निष्कर्षों की स्थापना करना अनुसंधान कहलाता है।"<sup>2</sup>

अनुसंधान शब्द के कई पर्याय हिन्दी में उपलब्ध हैं यथा—शोध, अन्वेषण, गवेषणा, अनुशीलन, परिशीलन, अन्वीक्षण, समीक्षा आदि। शोध शब्द अनुसंधान के अत्यंत निकट और स्थापनापन्न माना जाता है। शोध शब्द की व्युत्पत्ति 'शुध' धातु से हुई है जिसका अर्थ है शुद्ध करना, बनाना, रूप देना, त्रुटियों को दूर करना आदि।

डॉ. तिलक सिंह के अनुसार, "अनुसंधान के क्षेत्र में अज्ञात तथा विस्मृत तथ्यों को सर्वग्राह्य बनाना और ज्ञात तथ्यों को नवीन दृष्टि से संदेहरहित तथा निर्भ्रान्त बनाना शोध कहलाता है।"<sup>3</sup>

इस प्रकार शोध अथवा अनुसंधान से तात्पर्य है—अज्ञात को ज्ञात बनाना और उसे उसकी वास्तविकताओं सहित विश्लेषित करके नएपन के साथ पुनः प्रस्तुत करना ताकि सामाजिक को उसके प्रति कोई संदेह न रहे।

अनुसंधान के अर्थ से भिन्न होकर अब सूचना-प्रौद्योगिकी के अर्थ को जानना भी अपेक्षित है। सूचना-प्रौद्योगिकी के लिए अंग्रेजी में Information Technology शब्द चलता है जो Information तथा Technology शब्दों से निर्मित है। विकिपीडिया पर इसका अर्थ इस प्रकार दिया गया है—"आंकड़ों की प्राप्ति, सूचना (इंफार्मेशन) संग्रह, सुरक्षा, परिवर्तन, आदान-प्रदान, अध्ययन डिजाइन आदि कार्यों तथा इन कार्यों के निष्पादन के लिए आवश्यक कंप्यूटर हार्डवेयर एवं साफ्टवेयर अनुप्रयोगों से संबंधित है। सूचना-प्रौद्योगिकी कंप्यूटर पर आधारित सूचना-प्रणाली का आधार है।"<sup>4</sup> आजकल इसको सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी (Information and Communication Technology, ICT ) भी कहा जाता है। यह एक नया और उभरता हुआ क्षेत्र है और अत्यंत उपयोगी भी है।

वस्तुतः सूचना-प्रौद्योगिकी ने सम्पूर्ण विश्व को एक गाँव बना दिया है। एक कुंजी भर दबाने पर वांछित जानकारी उपलब्ध हो रही है। सूचना क्रांति से समाज के सम्पूर्ण कार्यकलाप प्रभावित हुए हैं—वह धर्म हो या शिक्षा, स्वास्थ्य हो, व्यापार हो, प्रशासन, सरकार हो अथवा उद्योग, संगठन, अनुसंधान हो अथवा प्रचार-प्रसार सभी क्षेत्रों में काया पलट हो चुका है। आज का समाज—सूचना समाज कहलाने लगा है और यह सब कुछ सूचना-प्रौद्योगिकी के कारण हो पाया है।

सूचना-प्रौद्योगिकी के अर्थ को स्पष्ट करते श्री एन. सी. पंत लिखते हैं—“यद्यपि सूचना की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। सूचना शब्द कई तरह के समाचारों के आदान-प्रदान के लिए प्रयोग में आता है। सूचना का वास्तविक सम्बन्ध ज्ञान के किसी स्रोत को किसी दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाना है जिसे उस ज्ञान की जानकारी पहले न रही हो। किसी घटना-विशेष की सम्पूर्ण या आंशिक जानकारी किसी व्यक्ति या समाज या पूरे मानवीय समाज को देना सूचना कहलाता है।”<sup>5</sup>

इस प्रकार सूचना-प्रौद्योगिकी आज के युग की शक्ति है। जिन देशों के पास समुन्नत सूचना प्रौद्योगिकी है, वे अधिक विकसित तथा समृद्ध हैं और इससे वंचित अथवा अल्पविकसित सूचना प्रौद्योगिकी वाले देश अभी भी आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं।

### **हिन्दी अनुसंधान और सूचना प्रौद्योगिकी-**

हिन्दी अनुसंधान और सूचना प्रौद्योगिकी के अर्थ विश्लेषण के उपरांत अब हमें यह देखना है कि दोनों का परस्पर सम्बन्ध कैसा है और सूचना-प्रौद्योगिकी हिन्दी अनुसंधान की दिशा में कहां तक सहायक है और हिन्दी शोधार्थियों को कितना लाभान्वित कर सकती है और कर रही है।

वर्तमान में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित दिशा-निर्देशों और जटिल गुणवत्ता सूचकांकों के कारण हर क्षेत्र में अनुसंधान और शोध-पत्रों ने गति पकड़ी है। प्रत्येक व्यक्ति आज अनुसंधित्सु बन रहा है। एक ओर जहां इस अनिवार्यता ने शोध-पत्रों और शोध-विषयों में वृद्धि की है वहीं पिछ-पेषण भी असीम गति से बढ़ा है। फिर भी आज इस ओर अत्यधिक ध्यान दिया जा रहा है, शोध-क्षेत्र में आशातीत वृद्धि ने शोध में अनेकानेक अन्य अनुशासनों और तकनीकी के प्रयोग की संभावनाओं को भी बढ़ा दिया है अतः “प्रत्येक शैक्षिक अनुशासनों में निरंतर शोध एवं अनुसंधान से नए-नए ज्ञान के अभ्युदय की होड़ लगी है। इससे शिक्षा के प्रत्येक विषय अपने को विकसित करने के लिए अन्य शैक्षिक अनुशासनों का भी आश्रय ले रहे हैं। फलतः अन्तरानुशासनात्मक शोध को महत्त्व मिल रहा है और नवीन सूचनाओं के प्रसंस्करण (प्रौसेसिंग) से सर्वथा अद्यतन, उपयुक्त एवं प्रासंगिक ज्ञान को अन्वेषित करने का प्रयत्न हो रहा है। स्वाभाविक है कि वर्तमान परिस्थिति में हिन्दी भाषा एवं साहित्य भी इसका लाभ उठाकर विविध अनुसंधात्मक परिप्रेक्ष्य में खड़ी चुनौतियों को अन्वेषित करते हुए अपने शोध अनुसंधान का मार्ग प्रशस्त करे।”<sup>6</sup>

हम इस बात से भी कतई इंकार नहीं कर सकते कि भारतीय समाज में दी जाने वाली उच्च शिक्षा (जिसमें अनुसंधान भी शामिल है) में अनेकानेक खामियां हैं। हालांकि किसी भी समाज के आधारभूत ढांचे (शैक्षणिक) की यह प्राथमिक कसौटी होती है और प्रगतिशील समाज के लिए इसका महत्त्व अक्षुण्ण होता है। शोध-संचयन के सम्पादक सम्पादकीय टिप्पणी में इस सम्बन्ध में लिखते हैं—“भारतीय समाज में दी जाने वाली उच्च शिक्षा में तमाम प्रकार की पारस्परिक खामियां रही हैं। इनमें अच्छे ढंग से नियमित रूप से

शोध कार्य का न होना एक आधारभूत खामी रही है। विज्ञान के कुछ विषयों को छोड़ दिया जाए तो अधिकतर दूसरे विषयों में विभिन्न विश्वविद्यालयों में नियमित तौर पर शोध करने की कोई पुष्ट अनिवार्य परम्परा नहीं रही है। इसका दुष्परिणाम यह रहा कि कई विषयों के महत्व को ही सन्देह की नजर से देखा जाने लगा। यद्यपि वे कभी भी कम महत्व के विषय नहीं रहे। आखिरकार विभिन्न विषयों के समय के साथ शोध के माध्यम से नए तथ्यों के शामिल न किये जाने पर उसकी प्रासंगिकता व उपादेयता का सन्देहपूर्ण होना बिल्कुल स्वाभाविक ही है। भारत जैसे देश के राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास, भाषा सहित कला व मानविकी के तमाम अन्य विषय क्षेत्र में शोध के महत्व व आवश्यकता से कौन इंकार कर सकता है।....एक प्रगतिशील समाज के लिए तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है।<sup>7</sup>

भारतीय संदर्भ में उच्च शिक्षा की बात करें तो निराशा होती है। उच्च शिक्षा में बेहद निरर्थक और अर्थहीन बातों को शामिल केवल इसलिए किया जाता रहा है क्योंकि स्वयं हमारा ज्ञान सुव्यवस्थित तथा पर्याप्त नहीं रहा है। इससे उच्च शिक्षा (अनुसंधान भी) अर्थहीन और दिशाहीन होती चली गई। हालांकि आज भी स्थिति अधिक सन्तोषजनक नहीं है।

हिन्दी में शोध की स्थिति अत्यंत शोचनीय है। पृष्ठ-प्रेषण और एक ही विषय पर अनेकानेक शोधग्रंथ लिखा जाना और केवल सोपाधी शोध को दृष्टिगत रखना अत्यंत कष्ट दायक है। निरुपाधी शोध करने वालों का नितांत अभाव हिन्दी अनुसंधान के लिए अभिशाप ही रहा है। एक ओर आधारभूत सामग्री की अनुपलब्धता और दूसरी ओर जीवन में जोखिम उठाने के प्रति उदासीनता ने हिन्दी अनुसंधान को सदैव हाशिए पर रखा। ऐसा भी नहीं है कि प्रयास हुए नहीं हैं, अवश्य हुए हैं और उत्तम स्तर के हुए हैं, परन्तु ये प्रयास परिमाण में काफी कम हैं। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में हिन्दी अनुसंधान की दिशा एवं दशा के विषय में डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह लिखते हैं—“आचार्य रामचन्द्र के पूर्व हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के समय हिन्दी की आधारभूत सामग्री कितनी सीमित थी यह किसी से छिपा नहीं है। उस समय कुछ खोज, रिपोर्ट या विद्वानों के व्यक्तिगत प्रयत्नों की फलश्रुति के अतिरिक्त कुछ भी शोध सन्दर्भ उपलब्ध नहीं था। किन्तु आचार्य शुक्ल और शुक्लोत्तर युग के इतिहास लेखन की परम्परा के सूत्रपात और अन्य कारणों से कतिपय शिक्षक-आलोचकों के श्रमसाध्य अनुसंधान से साहित्य का अकादमिक क्षेत्र समृद्ध हुआ है। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने हिन्दी के रचनात्मक संसार का असीमित विस्तार कर दिया है। केवल सौ वर्षों के इतिहास में भाषा-साहित्य के अनुसंधान में प्रचुर प्रगति हुई है।”<sup>8</sup> सचमुच कभी उँगलियों पर गिना जाने वाला साहित्य आज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है और इसका श्रेय संचार क्रांति को जाता है।

संचार माध्यमों के विकास और प्रचार-प्रसार ने जहां अन्य क्षेत्रों में काफी सहायता पहुँचाई है वहीं अनुसंधान के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिए हैं। इलेक्ट्रॉनिक स्रोत की उपस्थिति ने तो शोध की सन्दर्भ सामग्री और प्रविधि में व्यापक परिवर्तन कर दिया है। साहित्य शोध और अनुसंधान के क्षेत्र में अंकीय (डिजिटल) शब्दों और सन्दर्भ को शोध में कैसे लिया जाए और उस पर कितना विश्वास किया जाए। आज

साहित्य क्षेत्र के लिए यह जानना भी आवश्यक हो गया है। इलेक्ट्रॉनिक स्रोतों ने जहां साहित्य-अनुसंधान के क्षेत्र में अनुसंधित्सुओं का मार्गदर्शन किया है वहीं उनके लिए भ्रम की स्थिति भी उपस्थिति कर दी है। आज सन्दर्भ उपयोग के लिए ऑनलाइन पुस्तकालय और ऑनलाइन पत्र-पत्रिकाएं उपलब्ध हैं और नवीन संभावनाएं जगा रही हैं। इन संभावनाओं ने साहित्य-अनुसंधान के समक्ष नवीन संभावना एवं चुनौतियां भी पैदा कर दी हैं।

बढ़ रहे इलेक्ट्रॉनिक स्रोतों ने सम्प्रति अनुसंधान के क्षेत्र में अन्तरानुशासनात्मक शोध के वातावरण में विविध नए विषयों की संभावनाओं पर बल दिया है। अन्य भाषाओं और विषयों का अनूदित रूप हमारे पास उपलब्ध होने के कारण हिन्दी अनुसंधान के लिए नए फलक, नए विषय, नए अन्तरानुशासन, नए शिल्प आदि सुलभ हो गए हैं। वैश्वीकरण और सूचना क्रांति ने जहां बहुत कुछ संभावनाएं पेश की हैं, वहीं इनके दबाव में जटिल हो रही संवेदना से विषय का सरलीकृत रूप भी असामान्य हो गया है। अतः साहित्य अनुसंधान और भी जटिल और चुनौतीपूर्ण हो गया है।

आज हमें शोध के दुनिया में लकीर का फकीर बनने की न तो आवश्यकता है और न ही विवशता क्योंकि सूचना के बढ़ते साम्राज्य ने उपयोगी और प्रासंगिक सूचनाओं का पृथक्करण करते हुए इनकी प्रोसेसिंग से नए ज्ञान या तथ्यों को उद्घाटित करने वाले अनुसंधान के महत्व को अत्यंत विकसित किया है। इस सम्बन्ध में डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह लिखते हैं—“अपने शोध को सर्वथा वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक तथा प्रासंगिक और उपयुक्त बनाने के लिए शोध की प्रक्रिया और नवीन विषयों पर विचार करना नितांत आवश्यक है। साहित्यिक विमर्श, प्रवृत्त्यात्मक अध्ययन, शिल्पगत अध्ययन, नयी भाषिक प्रवृत्तियों के अन्वेषण साहित्य के समाजशास्त्रीय, समाजभाषिकी, पाठालोचन, शैली वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन के विविध परिप्रेक्ष्य में नवीन संभावनाओं को अन्वेषित करने की नितांत आवश्यकता है।”<sup>9</sup> आज इंटरनेट के प्रयोग से अनुसंधित्सु के समक्ष कुंजीपटल के एक दबाव से सूचनाओं का अपार भण्डार खुलने लगता है और लिंक पर लिंक मिलते चले जाते हैं और आवश्यकतानुसार जानकारी उपलब्ध होती जाती है परन्तु यह जानकारी कितनी उपयोगी और प्रामाणिक है, इस पर प्रश्न चिह्न है और अनुसंधित्सु के विवेक पर आधारित है।

यह सत्य है कि आज संचार क्रांति के युग में संगणक और इंटरनेट ने नवीन संभावनाओं को जन्म दिया है और आने वाले समय में और भी सुधार उपस्थित होंगे किन्तु वर्तमान समय तक हिन्दी अनुसंधान में अधिक संभावनाएं दृष्टिगोचर नहीं हो रही हैं और जो कुछ उपलब्ध है वह अनुसंधान के लिए अधिक उपयोगी नहीं है। इंटरनेट पर किसी कवि विशेष की सामान्य जानकारी तो अवश्य मिल जाएगी परन्तु यदि इस कवि विशेष पर हुए निरंतर और सामयिक कार्य और आलोचनाएं आज भी उपलब्ध नहीं हैं। रामचरितमानस पर आज तक सबसे ज्यादा शोध कार्य हुए हैं परन्तु ये सभी शोध कार्य अभी भी इंटरनेट पर उपलब्ध नहीं हैं ताकि नए अनुसंधित्सुओं को चुनाव किए जाने वाले विषयों के विषय में कोई नवीन जानकारी मिल सके। इंटरनेट के प्रयोग की एक समस्या यह भी है कि जो लिंक आज उपलब्ध हो रहा है संभवतः वह कुछ दिन पूर्व नहीं था और कुछ दिन पश्चात् भी नहीं

रहेगा। ऐसे में प्रामाणिकता संदेहास्पद हो जाती है। भ्रम की स्थिति बनने पर अनुसंधान पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। हिन्दी में कई प्रकार के कुंजीपटल और अनेकानेक हिन्दी फोण्ट उपलब्ध होने के कारण भी भ्रांति उत्पन्न होती है। अतः हिन्दी अनुसंधान में अभी क्रांति आना बाकी है। हमें बहुत कुछ करना होगा। “हिन्दी शोध के प्रारूप में एकरूपता लाने के लिए और वैश्विक आधार पर हिन्दी के शोधों को प्रतिष्ठित करने के लिए शोध लेखन के मानक प्रारूप को निश्चित करना होगा। मॉडर्न लैंग्वेज एसोसिएशन ऑफ अमेरिका (MLA) के हैण्डबुक या शिकागो विश्वविद्यालय के ‘शिकागो मैनुअल ऑफ स्टाइल’ की तरह हिन्दी के शोधविदों को या शोध संस्थाओं की परस्पर सम्मति से शोध-लेखन के प्रारूप को मानकीकृत करने की जरूरत है। शोध की गुणवत्ता को सुधारने और पुनरावृत्ति से बचने के लिए आज आवश्यकता है कि हिन्दी भाषा और साहित्य के सभी प्रकाशित सन्दर्भ ग्रंथों की ओर रचनाओं की विशाल सूची बने और अध्ययनकर्ता को आवश्यकता पड़ने पर उपलब्ध हो सके।”<sup>10</sup>

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी अनुसंधान के क्षेत्र में सूचना-प्रौद्योगिकी ने अत्यंत महत्वपूर्ण पहल करके कई संभावनाएं जगाई हैं और आने वाले समय में इस विषय में और भी उपलब्धियां हासिल होंगी परन्तु वर्तमान समय तक सूचना-प्रौद्योगिकी हिन्दी अनुसंधान में उतनी ही सहायता प्रदान कर पा रही है जितनी सहायता स्नातक का एक छात्र स्नातकोत्तर अथवा सोपाधी शोध के छात्र को दे सकता है। हमें सूचना क्रांति के क्षेत्र में हिन्दी अनुसंधान हेतु यदि पूर्णतः विकसित और उपादेय तकनीकी दरकार है तो हम हिन्दी वाले को आगे आना होगा और हिन्दी की प्रत्येक रचना, प्रत्येक पुस्तक, प्रत्येक शोध प्रबन्ध को इंटरनेट पर डालना होगा ताकि हिन्दी अनुसंधान करने वालों को नवीन क्रांति से फायदा हो सके और पिष्ट-पेषण से मुक्ति मिल सके। आज हम विषय के चुनाव में ही कितना समय बर्बाद कर देते हैं और फिर अपनी सुविधा के लिए ऐसे विषय को चुन लेते हैं जिन पर ढेरों कार्य हो चुके हैं। यदि सभी विश्वविद्यालयों में हुए अथवा हो रहे हिन्दी अनुसंधानों की सूची और शोध-प्रबन्ध अपलोड कर दिए जाएं तो भ्रांतियां और पुनरावृत्ति पर लगाम संभव है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. जोगेश कौर, डॉ. हरीश अरोड़ा, शोध : निकष पर, रेखा प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2004, प्राक्कथन.
2. वही-पृष्ठ 12.
3. उद्धृत-वही-पृष्ठ 11.
- 4- <http://hi.wikipedia.org/5/kdy>
5. उद्धृत, डॉ. हरमोहन लाल सूद, डॉ. देवेन्द्र कुमार, पत्रकारिता : पहचान और प्रशिक्षण, वागीश प्रकाशन, जालंधर, संस्करण 2005, पृष्ठ 201-202.
6. डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह, साहित्य शोध के विविध परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियां, शोध-संचयन (ऑन-लाइन अर्द्धवार्षिक पत्रिका), जनवरी 2010.



7. शोध के प्रति जागरूकता व लगाम जरूरी—सम्पादकीय, शोध—संचयन, जनवरी 2014.
8. डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह, साहित्य शोध के विविध परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियां, शोध संचयन, जनवरी 2010.
9. वही—पृष्ठ 2.
10. वही—पृष्ठ 2.

डॉ० पंकज श्रीवास्तव

मा० कांशीराम महाविद्यालय,  
इलाहाबाद

भारतीय वाङ्मय ने मानव जीवन का जिन विविध उपादानों से उपकार करते हुए दिग्बोध कराया है उनमें 'योग' का महत्तम स्थान है इसकी उपयोगिता जग जाहिर हो चुकी है प्रमुख प्रचारकों प्रवक्ताओं ने यथा व्यास, वाचस्पति, पतंजलि भोज से लेकर रामदेव पं० रविशंकर हमारे प्रधानमंत्री मोदी जी आदि ने अपने-2 समय में योगविद्या का महत्व स्थापित करते रहे हैं इन्हीं लोगों के प्रयासस्वरूप 21 जून को विश्व योग दिवस के रूप में मानने का निश्चय किया गया।

योग शब्द की उत्पत्ति जिस धातु से हुई है वह पाणिनीय व्याकरण के अनुसार इस प्रकार है—

- (1) युज्-समाधौ
- (2) युज-सयमने
- (3) युजिर-योगे

सामान्यतः योग शब्द युज्+धम् प्रत्यय से मानी गयी है किन्तु अलग-2 स्थानों पर योग के लिए उपरि विवेचना तीनों अर्थों में परिलक्षित होती है योग विद्या की परिभाषाएं उनके वाङ्मय में मिलती हैं किन्तु इसके परिभाषित होने से पहले ही योगाभ्यास भारतीय लोक जीवन में प्रचलित हो चुका था।

मोहनजोदड़ों में मिली भगवान पशुपति की मूर्ति के तीन-तीन नेत्रों मुखों से तो वर्तमान त्रिमूर्ति शिव की स्मृति सघःमन में आ जाती है। इतना ही नहीं, भगवान पशुपति की उस मूर्ति से अभिव्यक्त होने वाली एक विशेष प्रकार की ज्ञानमुद्रा और विशेष प्रकार का योग आसन इस बात को सिद्ध करते हैं कि आज से कई सहस्र वर्ष पूर्व के भारत में योग के अभ्यास का प्रचार था और नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाए हुए नेत्र योगी की पत्थरमूर्ति इस बात का दृढ़ प्रमाण है कि भारत के वे अतिप्राचीन निवासी शाम्भवी-मुद्रा नामक शैव दर्शन की अति उत्कृष्ट योगसाधना को भी अवश्य ही जानते थे और उसका अभ्यास भी करते थे। शैव दर्शन के उत्कृष्ट और सूक्ष्मतर सिद्धान्तों की साक्षात् अनुभूति शाम्भव योग के ही अभ्यास से हो सकती है बिना योगज साक्षात्कार के उन सूक्ष्मतर सिद्धान्त मानव मस्तिष्क पहुँच नहीं सकता तो उस प्राचीन भारतीयों की शाम्भव योग में प्राप्त की हुई निपुणता से इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि उस योग के फलस्वरूप शाम्भव दर्शन के सिद्धान्तों का ज्ञान भी उन्हें अवश्य ही प्राप्त हुआ होगा इससे यह सिद्ध

होता है कि न केवल शैवधर्म और शैवसाधाना ही का अपितु शैवदर्शन का भी घनिष्ठ सम्बन्ध भारत के उस अतिप्राचीन इतिहास के साथ रहा होगा। योग तो वस्तुतः माहेश्वर दर्शन की ही देन है इसी कारण महाकवि भास जैसे अति प्राचीन कलाकारों ने भी उस समय में प्रचलित परम्परा के अनुसार सर्वोत्तम योगशास्त्र को महेश्वर शास्त्र ही कहा है।

यद्यपि 'युज' धातु का प्रयोग मनस् शब्द के साथ योग के अर्थ में ऋग्वेद में मिलता है तथापि कठोपनिषद् में स्पष्ट रूप से योग को परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है—

जब पंच ज्ञानेन्द्रियां मनसहित आत्मा में स्थिर होकर बैठती है, बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती, तब इस अवस्था को परमागति कहते हैं। उसी स्थिर इन्द्रिय धारणा को योग कहते हैं उस अवस्था में साधक प्रमाद-रहित होता है उत्पत्ति और नाश योग ही है।<sup>3</sup>

योग के फल एवं महत्व का उद्घोष भारतीय साहित्यों में नाना प्रकार से हुआ है श्वेताश्वतर उपनिषद् में वर्णित है कि सम और शुचि कंकड़ियों से रहित, आग और बालू से वर्जित तथा शब्द, जल और आश्रय के द्वारा मन के अनुकूल लगने वाला, जहाँ पशु को पीड़ा देने वाली कोई वस्तु न हो ऐसा तथा गुहा सा एकान्त और निर्वात स्थान चुनकर वहाँ योगाभ्यास करें, शरीर का हल्का होना, आरोग्य, अलोलुपता नेत्रों को प्रसन्नता देने वाली शरीर क्रान्ति, मधुर स्वर, शुभ गन्ध, मल-मूत्र की कमी ये लक्षण प्रथम दृष्टया योग प्रवृत्ति के हैं।<sup>4</sup> इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर श्वेताश्वरोपनिषद् में कहा गया है—

**न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः  
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥**

अर्थात् योगाग्निमय शरीर जिसको प्राप्त होता है। उसे कोई रोग नहीं होता बुढ़ापा नहीं आता और मृत्यु भी नहीं होती।

अतः उपरोक्त विवरण के आलोक के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रायः प्राचीन साहित्य ग्रन्थों में योग विधा का साररूप से प्रभावी निरूपण किया गया है। योग सैद्धान्तिक विश्व का अनुपूरक तो है ही आज की विश्व शान्ति को भी दिशा निर्देशित करने में पूर्ण समर्थ है।

#### **सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

- (1) अधोदंघटित लोचनः स्थिरमना नासाग्रदत्तेक्षण-  
श्रन्द्राकविपमि लीनतामुगपगतौ त्रिस्पन्दभावान्तरे।(अनुभव निवेदन स्रोत-2)
- (2) माहेश्वरं योगशास्त्रम् ..... (प्रतिमा नाटक, अंक-5)
- (3) कठोपनिषद् अ-2 वल्ली 3/10-11
- (4) समे शूचौ शर्कराबद्धिबालुका विवर्जिते शब्दजला  
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने, गुहनिवाता भ्रमणे प्रयोजयेत् ॥  
लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसोष्ठवं च।  
गन्धः शुभो मुत्रपुरीषमल्यं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥ (श्वेताश्वर उपनिषद् 2/10, 13)

प्रवीन कुमार मिश्र

एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग  
प्राचीन इतिहास विभाग  
ने0 ग्रा0 भा0 विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।



भारत के सामाजिक इतिहास में वर्ण व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है, जो सामाजिक विभाजन के रूप में वैदिक काल से आज तक उत्तर से दक्षिण तक निरन्तर प्रवाहमान है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत भारतीय समाज का वर्णों में विभाजन किया गया था। इसका प्रधान आधार रंग-भेद अथवा प्रजातीय धारणा ही थी। वैसे आर्यों ने इस विभाजन के अन्तर्गत यह व्यवस्था भी रखी थी कि कोई भी व्यक्ति कार्य पद्धति रुचि और मनःस्थिति के अनुसार वर्ण परिवर्तन कर सकता था, किन्तु ऐसी विकल्पना व्यवहार में विरल ही थी तथा उत्तर वैदिक काल के परवर्ती युग तक आते-आते वर्ण व्यवस्था का यह लचीलापन समाप्त हो गया था। उसमें कठोरता आ गई थी। यह सत्य है कि इसने समय-समय पर हिन्दू समाज की समस्त गतिविधियों को अपने विचारों और कार्यों से प्रभावित किया। फलतः देश में होने वाले अनेकानेक परिवर्तनों, संघर्षों तथा क्रान्तियों में इसकी क्रांतदंशी भूमिका रही। कालान्तर में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी अवस्थाओं का इसने अपनी वर्णगत व्यवस्था से किसी न किसी रूप में दिशा-निर्देशन किया। अपने भेद-परक प्रभाव और महत्व को एक-दूसरे वर्ण पर सिद्ध करने के लिए इस व्यवस्था के अन्तर्गत वर्णों के कायिक और वाचिक परस्पर मतभेद और संघर्ष भी होते रहे तथा प्रतिस्पर्धी-स्वरूप एक-दूसरे वर्ण के विरुद्ध निराधार तर्क भी प्रस्तुत किए जाते रहे, किन्तु इन भेद-भाव की प्रणालियों के बावजूद वर्ण-व्यवस्था की जड़ें कहीं से भी निर्बल नहीं पड़ीं, बल्कि परस्पर विचारों, निर्दिष्ट कार्यों और अधिकारों के संघर्ष से इस व्यवस्था की जड़ें और गहरी होती गईं, जो आज भी हिन्दू समाज में विद्यमान है।

प्राचीन छत्तीसगढ़ क्षेत्र के (दक्षिण कोसल) ई0पू0 द्वितीय शती से बारहवीं शताब्दी ई0 के मध्य के सामाजिक संरचना के अन्तर्गत समाज में वर्ण व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान था। यह क्षेत्र उत्तर एवं दक्षिण भारत के मध्य में स्थित होने के कारण यहां के सामाजिक संरचना में दोनों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। समय-समय पर देश के अन्य भागों से आये विभिन्न व्यवसाय या शिल्प से सम्बन्धित प्रवासी जातियों का समुदाय छत्तीसगढ़ की सामाजिक संरचना को प्रभावित करता रहा है। इसके साथ-साथ वन्य क्षेत्रों में निवास करने वाले लगभग सौ वन्य जातियों का भी छत्तीसगढ़ के सामाजिक आर्थिक संरचना तथा सामाजिक जीवन में विशिष्ट स्थान रहा है।<sup>1</sup>

सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार श्रम विभाजन के आधार पर सम्पूर्ण समाज को चार वर्णों में बांटा गया है। ये चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ही भारतीय समाज की जीवन की आधारशिला मानी जाती थी।<sup>1</sup>

हमारे<sup>3</sup> प्राचीन हिन्दू चिंतकों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य जन्म से प्रारम्भ होकर मनुष्य के मृत्यु के बाद तक चलते रहते हैं। ऋग्वेद कालीन वर्णधर्म का पालन तत्कालीन समाज में भी किया जाता था।

“गाथा सप्तशती”<sup>4</sup> प्राकृत महाकाव्य, जो कि प्रथम शताब्दी ए०डी० से 8 शताब्दी ए०डी० के बीच रखा गया था, सूचनाओं का महत्वपूर्ण श्रोत है। प्रत्येक समाज की भांति ही इस क्षेत्र के तत्कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था तथा आश्रम व्यवस्था आर्यों के सामाजिक संगठन के दो पहिये थे, जो एक युग से दूसरे युग तक निरन्तर गतिमान थे। वर्णव्यवस्था परम्परागत सामाजिक संस्था थी, जहां समाज को सुसंगठित, सुदृढ़ एवं सुनियोजित बनाये रखने का प्रयास किया जाता था।

धर्मसूत्री<sup>5</sup> की शिक्षा दक्षिणी क्षेत्र के लोगों द्वारा अपने सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में अपना ली गयी थी। सूत्रों के अनुसार दक्षिण कोसल में दक्षिणपथ के अन्य भागों की तरह ही धर्म सूत्रों से निर्देशित पद्धति से ही जीवन-यापन करते थे।

दक्षिण कोसल 3 राज्यों में विभाजित था तब भी वर्ण व्यवस्था समाज में दृढ़ता से प्रतिष्ठित थी। दक्षिण कोसल में समाज चार वर्णों में विभाजित था, इस प्रकार से है।

#### 1. ब्राह्मणः—

ऋग्वेद समाज में आर्य और अनार्य थे। उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मण कहने वाले एक नये वर्ग का उदय हुआ, जिसका कार्य यज्ञिक उपासना अथवा कर्मकाण्ड का सम्पादन करना था।<sup>6</sup> इनका स्थान सर्वोपरि था, क्योंकि क्षेत्र में अधिक सुसंस्कृत, सुसम्पन्न माना जाता था। ब्राह्मणों को “पंचमहायज्ञादि” धार्मिक कार्य करने के लिए राजा की ओर से मंगल कार्य के प्रसंग में भूमिदान दिया जाता था।<sup>7</sup> मनु के अनुसार ब्राह्मणों के जीवन का आदर्श ही यह था निर्धनता एवं सादा जीवन संस्कृति का रक्षण एवं विकास करना उसे उतना ही धन रखने की आज्ञा थी, जितना वह अपने परिवार का भरण-पोषण कर सके।<sup>8</sup>

ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति समाज में गुणों के कारण ऊंची रही है। धीरे-धीरे गुण और कर्म के आधार पर उनकी अनेक शाखा एवं उपशाखा बन गई। उनका समाज में स्थान गुण के साथ-साथ वंश पर भी आधारित हो गया।<sup>9</sup>

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार “वैदिक काल में सप्त ऋषि (भृगु, अंगिरस, अत्री, विश्वामित्र, कश्यप, वशिष्ठ एवं अगस्त्य) थे, जिन्हें वैदिक कालीन ब्राह्मण अपने पूर्वज मानते थे।<sup>10</sup> इन सात ऋषियों के अन्तर्गत विभिन्न उपविभाग होते थे। जैसे भृगु के सात, अत्री के चार, विश्वामित्र के दस, कश्यप के पांच, गौतम के दस, वशिष्ठ के पांच, अगस्त्य के चार, भारद्वाज के चार, अंगिरस के चार गोत्र का उल्लेख मिलता है। जो वेद के जिस शाखा का अध्ययन करता था वह उसी शाखा का कहा जाता था। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद के अनेक

शाखाओं का उल्लेख है।<sup>11</sup> शरभपुरीय शासकों के ताम्रपत्रों में धारणी गोत्र (कुरुद ताम्रपत्र), पराशर गोत्र (ठकुरदिया ताम्रपत्र) कौडिन्य गोत्र (आरंग ताम्रपत्र) भारद्वाज गोत्र (मल्लार ताम्रपत्र) का उल्लेख है।<sup>12</sup> इसी प्रकार पाण्डुवंशीय शासकों के अभिलेखों में शाण्डिल्य गोत्र (मलगा ताम्रपत्र) भारद्वाज गोत्र (राजिम एवं बोडा ताम्रपत्रों) का उल्लेख मिलता है।<sup>13</sup>

इस समय ब्राह्मणों में द्रविड़, गौड़ जैसे भेद नहीं थे। इसी प्रकार मिश्र, अवस्थी, जैसे कुल नाम भी नहीं थे। केवल वेद, शाखा और गोत्र के आधार पर ही भेद माना जाता था।<sup>14</sup> इसी प्रकार रतनपुर के कलचुरि शासकों के अभिलेखों में वत्स गोत्र (डकोनी ताम्रपत्र) चन्द्रा त्रेय गोत्र (अमोदा ताम्रपत्र) सावर्ण एवं भारद्वाज गोत्र (अमोदा ताम्रपत्र) वत्स गोत्र (सरखों ताम्रपत्र) था उल्लेख मिलता है।<sup>15</sup> गोत्र के साथ शाखा भी प्रमुख था। शरभपुरीय शासकों के वाजसनेय शाखा (ठाकुरदिया ताम्रपत्र), मध्यन्दिन शाखा (आरंग ताम्रपत्र) का उल्लेख है।<sup>16</sup> सोमवंशी शासकों के ताम्रपत्रों में गौतम शाखा (पटना ताम्रपत्र) मैत्रायिणी शाखा (महाकोशल इतिहास परिषद ताम्रपत्र) अद्धवी शाखा (कुण्डोपाली ताम्रपत्र), कण्व शाखा (पटना संग्रहालय ताम्रपत्र) का उल्लेख मिलता है।<sup>17</sup>

कलचुरि शासकों के अभिलेखों<sup>18</sup> में कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ता है। गोत्र के साथ-साथ प्रवर का भी उल्लेख हुआ है। कुछ स्थानों पर प्रवरों की संख्या-1, 2, 3, 5 का उल्लेख मिलता है।

सोमवंशी शासकों के पश्चात (छत्तीसगढ़) क्षेत्र में शासन करने वाले कलचुरि शासकों के अभिलेखों में भी प्रवर का उल्लेख मिलता है।<sup>19</sup> जैसे उत्तिथ्य, गौतम, वशिष्ठ, प्रवर (अमोदा ताम्रपत्र) आदि। इस क्षेत्र के अभिलेखों में दान ग्रहण करने वाले ब्राह्मणों के नाम के साथ विभिन्न उपनाम तथा उनके मूल स्थान का भी उल्लेख मिलता है। जैसे शरभपुरियों के अभिलेखों में नाम के साथ अंत में अधिकांशतः स्वामी मिलते हैं। जैसे (विष्णु स्वामी एवं भाश्रुत स्वामी)<sup>20</sup> पाण्डुवंशीय शासकों के अभिलेखों में नाम के आगे भट्ट और बाद में स्वामी लगाते थे। जैसे (भट्ट त्रिविक्रम स्वामी)<sup>21</sup> सोमवंशी शासकों के अधिकांश ताम्रपत्रों में नाम के आगे भट्टपुत्र लिखा जाता था जैसे (भट्टपुत्र दामोदर)<sup>22</sup> कुछ अभिलेखों में नाम के आगे भट्ट (भट्ट जी महोदधी)<sup>23</sup> लिखा जाता था। कुछ ब्राह्मणों के साथ उनके मूल स्थान को प्रदर्शित करने वाले "माथुर" "नागर" जैसे विशेषण जुड़े थे। इसी भांति बाद में ब्राह्मणों की उपजातियों का प्रादुर्भाव हुआ।<sup>24</sup> इनके नाम के आगे पण्डित, ठाकुर, गैन्ता आदि शब्द तथा नाम के अन्त में प्रायः "शर्मा" शब्द आया है। मिश्र, त्रिपाठी आदि उपनाम 15-16वीं शताब्दी के लेखों में मिलते हैं।<sup>25</sup> शैवाचार्य और शंकरभरीविद्या में पारंगत ब्राह्मणों के नामों का भी उल्लेख मिलता है।<sup>26</sup>

ब्राह्मणों के मूल स्थानों का उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु सोमवंशी और कलचुरि शासकों के अभिलेखों में दान ग्रहण करने वाले ब्राह्मणों के मूल स्थान का उल्लेख मिलता है। जैसे सोमवंशीय शासकों के अभिलेखों में श्रावस्ती, मण्डल, भटपरोली, मध्य प्रदेश, तिरहुत, भुक्ति, टाकारी, कौशल देश आदि स्थानों का भी उल्लेख मिलता है।<sup>27</sup>

कलचुरि शासकों के अभिलेखों में कुलांचा, टकारी, कुम्भटी, हस्तियामठि का उल्लेख है।<sup>28</sup>

छत्तीसगढ़ से प्राप्त अभिलेखों में विभिन्न अवसरों जैसे एकादशी, पूर्णिमा, श्रावण, कार्तिक, मकर संक्रान्ति, सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण आदि पर ब्राह्मणों को दिये गये दान का विवरण है।<sup>29</sup> धर्मशास्त्रों के अनुसार दान दी गई भूमि या पूंजी पर किसी प्रकार का कर लगाना वर्जित था।<sup>30</sup>

अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ये ग्राम सभी प्रकार के करों से मुक्त थे तथा शासकीय अधिकारियों का प्रवेश निषिद्ध होता था। लगभग सभी दानपात्रों में “चाट-भाट” प्रावेश्यस्य र्पकरविसिर्जित” शब्द का उल्लेख मिलता है। पृथ्वीदेव द्वितीय के कोनी शिलालेख में सर्वोधिकारी पुरुषोत्तम को दान में दिये गये एक ग्राम का उल्लेख है, जिनमें पृथ्वीदेव द्वितीय ने एक मंदिर निर्माण की पूजा-अर्चना हेतु एक विद्वान ब्राह्मण को नियुक्त किया था।<sup>31</sup>

समाज के बुद्धजीवी वर्ग के प्रतिनिधि एवं आध्यात्मिक गुरु होने के नाते ज्ञान एवं कला के अनेक क्षेत्रों की जानकारी ब्राह्मणों को होना अनिवार्य थी।<sup>32</sup> इनमें से अनेक वेदों (पुरावैदिक, ज्ञान, अख्यक, ब्राह्मण, उपनिषद) वेदांगों<sup>33</sup>, दर्शनशास्त्र की पद्धतियों (सांख्योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, वेदान्त)<sup>34</sup> इसके साथ ही साथ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि शैव, पाशुपत एवं शाक्त तथा बौद्ध मत के अनुयायी ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है<sup>35</sup>, जो न्याय, दर्शन, वेदान्त शैव, शाक्त सिद्धान्तों के ज्ञाता थे। जाजल्लदेव प्रथम के धार्मिक गुरु रूद्रशिव, बौद्ध दर्शन, डिडनागा आदि अनेक सिद्धान्तों को जानते थे। जाजल्लदेव के मल्लार शिलालेख में सोमराज हवन पूजन का बड़ा सुरम्य वर्णन मिलता है।<sup>36</sup> नारायण शर्मा का उल्लेख शिवरीनारायण में रतनदेव द्वितीय के ताम्रपत्र में उद्गात्री अर्थात् पुरोहित के कार्य में अत्यन्त निपुण इस भांति किया गया है।<sup>37</sup>

कलचुरि कालीन प्रलेखों में लिखा है कि ब्राह्मणों को स्वप्न में भी अपमान नहीं करना चाहिए। दान देकर, मान देकर, अर्चना करके लोगों को (इसी जन्म में) पाप एवं पुण्य का निपटारा किया जा सकता है।<sup>38</sup> ब्राह्मण राजा के मंत्रिमण्डल में पुरोहित भी होते थे। संकट के समय राजा को सलाह एवं सहायता भी करते थे। भाकमिश्र, सोमेश्वर, पुरुषोत्तम, गंगाधर आदि ब्राह्मण मंत्रियों के कार्य कौशल का उल्लेख कलचुरियों के अभिलेखों में है। रणभूमि में शौर्य प्रदर्शन के साथ-साथ बुद्धि एवं कुशलता से आर्थिक संकट को दूर किया। कई ब्राह्मणों ने राज प्रशस्तियां भी लिखी थी, जिससे उसके कवि होने का प्रमाण मिलता है।<sup>39</sup>

वर्तमान काल में इस क्षेत्र में ब्राह्मणों की निम्न उपजातियां मिलती हैं, जिन्हे उनके मूल स्थान के नाम से जाना है। सरयूपारी, कान्यकुब्ज, मालवीय, नामदेव, मडलीहा, महापात्र, गुर्जर एवं द्राविडियन आदि हैं।<sup>40</sup>

इस प्रकार ब्राह्मणों का दक्षिण कोसल में विशिष्ट स्थान था।

## 2. क्षत्रियः

सामाजिक वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत दूसरा स्थान क्षत्रियों का आता है। इन्हे समाजरूपी पुरुष का बाहु माना गया है। इन्हे राजस्व भी कहा जाता है, जिसका तात्पर्य राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य सभी प्रकार के सुरक्षा प्रदान करना दक्षिण कोसल के शासक एवं उनके सम्बन्धी क्षत्रिय ही थे, जिनके अथक प्रयास से दक्षिण कोसल का क्षेत्र समृद्धशाली एवं सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ।

ईसा की चौथी शताब्दी के लगभग क्षत्रिय जाति के अनेक शाखा एवं उपशाखा बन गई थी। वे अपना उद्भव सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि अथवा किसी पौराणिक पुरुष से मानते थे। विभिन्न अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चौथी शताब्दी ईसवी से बारहवीं शताब्दी ईसवी के मध्य शासन करने वाले विभिन्न राजवंश के शासक भी क्षत्रिय थे। शरभपुरीय वंशों के शासकों के अधिकांश अभिलेखों में वंश का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु व्याघ्रराज के मल्लार ताम्रपत्र में वंश का नाम आमरार्यकुल कहा गया,<sup>41</sup> जिसकी पुष्टि उसके समकालीन पाण्डुवंशीय शासक भरतबल के ब्राह्मणी ताम्रपत्र से होती है। इसके पश्चात शासन करने वाले पाण्डुवंशीय शासकों के अभिलेखों में इनके वंश का नाम पाण्डु, चन्द्र तथा सोमवंश मिलता है। सोमवंशीय शासक अपना उद्भव सोम अथवा चन्द्र से मानते हैं, किन्तु ये त्रिकालिंगाधिपति की उपाधि धारण करते थे। इसी कारण इन्हे त्रिकालिंगाधिपति कहा जाता है।<sup>42</sup>

कलचुरि नरेशों के ताम्रपत्रों में कलचुरि नरेश अपने को कार्त वीर्य सहस्त्रार्जुन का वंशज मानते थे। इसके साथ ही अपने को चन्द्रवंशी मानते थे।<sup>43</sup> ये अपने को हैहयवंशी भी कहते थे। स्मृतियों, नीतिशास्त्रों में क्षत्रियों के लक्षण बताये गये हैं। जैसे— जनता की रक्षा, उदारता, त्याग की भावना, राज्य की रक्षा करना, सांसारिक सुखों का त्याग आदि। वेदों में घोषित है कि ब्राह्मणों ने क्षत्रियों की मदद से ही ईश्वर, पितर तथा मनुष्यों पर पकड़ बनायी। ये वाक्य गौतम धर्मसूत्र में स्पष्ट रूप से है।<sup>44</sup>

क्षत्रिय वर्ग में ही एक नई जाति का उदय हुआ, जिसे राजपूत कहा जाता था। स्मृतिकारों ने इन्हे क्षत्रिय कहा है, किन्तु अनेक अभिलेखों<sup>45</sup> में उन्हें राजपूत कहा गया है। राजपूत शब्द का अर्थ है राजा का पुत्र। इससे स्पष्ट होता है कि राजपूत लोग देश में प्रचलित शासन व्यवस्था सम्बन्धित थे। प्राचीन साहित्यों में क्षेत्र के साथ-साथ राजन्य शब्द भी क्षत्रियों के लिए प्रयुक्त होता था।<sup>46</sup>

राजिम से प्राप्त शिलालेख में उत्कीर्ण है कि सामंत जगपालदेव प्रतिदिन नियमित रूप से पुराण, अगम, महाभारत, रामायण आदि ध्यान से सुनता था तथा स्वाध्याय भी करता था।<sup>47</sup> खरोद<sup>48</sup> से प्राप्त शिलालेखों से स्पष्ट है कि क्षत्रिय कुमार पाल एक वरिष्ठ कवि थे, जो साहित्य एवं राजनीति में ज्ञान रखते थे। कोर्न से प्राप्त शिलालेख द्वारा ज्ञात होता है कि रतनदेव द्वितीय समस्त छत्तीस शास्त्रों की विद्या में निपुण था।<sup>49</sup> राज्य के महत्वपूर्ण पदों पर उनकी नियुक्ति हुआ करती थी।<sup>50</sup> शासन सूत्र के संचालन में क्षत्रियों की बुद्धि और शक्ति का प्रयोग होता था। क्षत्रिय राजा प्रजा से विविध प्रकार के कर लेते थे और क्षत्रिय सैनिक या राजपुरुष राजा के वेतनभोगी होते थे।<sup>51</sup> स्मृतिकारों ने इनका स्थान ब्राह्मणों के बाद रखा



है, किन्तु बौद्ध और जैन साहित्य में ब्राह्मणों से अधिक महत्व क्षत्रियों को दिया है।<sup>52</sup> राजाओं के साथ प्रशासनिक व्यवस्था में भी क्षत्रिय सामंत संलग्न थे। इस प्रकार का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है। छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) के क्षत्रिय नाम दानवीर कुशल प्रशासन विद्या में निपुण थे। परवर्ती काल में देश के विभिन्न प्रान्तों से क्षत्रियों का कई समूह छत्तीसगढ़ में आकर बस गये। इनके विभिन्न उपभेद मिलते हैं। जैसे कन्नौजिया (कन्नौज से आने वाले) डेहरिया एवं दहरिया (डाहल मण्डल में आने वाले) हैहयवंशी (कलचुरि के वंशज) आदि। इन सभी समूहों में निम्न उप जाति भेद भी मिलते हैं जैसे— बुन्देला, सोमवंशी, सूर्यवंशी, अग्निवंशी, यदुवंशी आदि।<sup>53</sup>

इस प्रकार वर्तमान छत्तीसगढ़ में क्षत्रियों एवं अन्य जातियों का समान रूप से अधिकार और महत्व है। वर्तमान समय में इनकी जनसंख्या इस क्षेत्र में तीन प्रतिशत के लगभग माना जाता है।

### 3. वैश्यः—

वर्णव्यवस्था की तीसरी संरचना वैश्य को माना गया है। वैश्य लोग प्रारम्भ से ही भारतीय समाज के मेरूदण्ड माने गये हैं। कलचुरियों के शासन से पूर्व दक्षिण कोसल के आर्य समाज के वैश्यों से सम्बन्धित साक्ष्य न मिलने के कारण कुछ कहना कठिन है। चातुर्वर्ण्य में वैश्य को विशेष स्थान प्राप्त था। इस जाति के कई पुरुषों ने रण स्थल में भी अपना पराक्रम दिखाया था।<sup>54</sup>

वैश्य शब्द ऋग्वेद में पुरुष सूक्त को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलता है।<sup>55</sup> विश का उल्लेख अवश्य स्थान-स्थान पर हुआ है,<sup>56</sup> जो युद्ध में भाग नहीं लेते थे वे एक विनीत स्थिति के अधिकारी होते थे। उन्हें विश कहा जाता था।<sup>57</sup>

धर्मशास्त्रों एवं स्मृतिकारों में वैश्यों का कर्तव्य, अध्ययन, भजन, दान, कृषि, वाणिज्य एवं पशुपालन बताया गया है और आवश्यकता पड़ने पर प्रशासन तथा सैनिक वृत्ति भी वैश्य ग्रहण कर समाज की रक्षा कर सकता है।<sup>58</sup> इसके अलावा वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रियों की सेवा कार्य भी बताया है।<sup>59</sup> अभिलेखों में तीन वैश्य परिवारों के उल्लेख मिलते हैं। ये कलचुरि राजाओं के विशेष सेवा किया करते थे तथा राजदरबार में अपना विशेष स्थान रखते थे। अमोदा से प्राप्त पृथ्वीदेव प्रथम के ताम्रपत्र<sup>60</sup> और रतनपुर से प्राप्त शिलालेख<sup>61</sup> श्रेष्ठी यश का उल्लेख मिलता है। यह रतनपुर प्रधान के पद पर आसीन था। प्रधान के कार्य "ग्रामधिपति" के समकक्ष होने के प्रमाण मिलते हैं। श्रेष्ठी यश के सहयोग से ही रत्नराज प्रथम ने रतनपुर शहर को रमणीक एवं गौरवशाली बनाया।

धर्मशास्त्रों, स्मृतिकारों में वैश्यों का कर्तव्य अध्ययन, यजन, दान, कृषि, वाणिज्य एवं पशुपालन बताया है। आवश्यकता पड़ने पर प्रशासन तथा सैनिक वृत्ति भी वैश्य ग्रहण कर समाज की रक्षा कर सकता है।<sup>62</sup> शरभपुरीय तथा कलचुरियों के द्वारा जारी किए गये स्वर्ण, रजत तथा ताम्र सिक्के तथा इसके साथ-साथ कुछ अभिलेखों, व्यापारिक वस्तुओं में लगने वाले कर शुल्क<sup>63</sup> तथा बिक्री कर<sup>64</sup> का उल्लेख मिलता है। इससे ऐसा लगता है कि वैश्यों की स्थिति अच्छी थी।

साधारण तौर पर वैश्यों को वेदाध्ययन का तथा दर्शन शास्त्राध्ययन का अधिकार न था, अलबरूनी ने इसी बात की पुष्टि की है कि वैश्यों एवं शूद्रों को वेदों के पठन, पाठन एवं श्रवण का अधिकार न था। अलकतरा से प्राप्त शिलालेख स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि राघव बल्लभराज<sup>65</sup> श्रेष्ठी रल्हन आदि अनेक वैश्य शिक्षा के विविध क्षेत्रों में अग्रणी थे, यथा राघव—कलावन वान बल्लभराज बहुविधविद्या<sup>66</sup> परिचय श्रेष्ठी रल्हन संस्तुना बुद्धिना आदि।<sup>67</sup> कई ताम्रपत्रों के उत्कीर्णक का नाम के साथ विज्ञानी शब्द का उल्लेख मिलता है। कटक ताम्रपत्र<sup>68</sup> में उत्कीर्णक का नाम माधव (विज्ञानी) मिलता है। कलचुरि शासकों के अभिलेखों में शिल्पी या शिल्पकार शब्द का उल्लेख मिलता है। वैश्यों के अनेक उपभेद भी हैं, स्वर्णकार, बनिया, ताम्रकार आदि। छत्तीसगढ़ में वैश्यों की संख्या लगभग दो प्रतिशत थी।<sup>69</sup>

#### 4. कायस्थः—

पूर्वमध्यकालीन समाज में नयी जाति का अभ्युदय हुआ, जो कायस्थ जाति के नाम से विख्यात हैं। राजपूतों की भांति पौराणिक है, परन्तु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। इसकी उत्पत्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा शूद्र वर्ण से बताई जाती है। कलचुरि कर्ण के रीवा शिलालेख<sup>70</sup> में शिव से उत्पन्न ऋषि काचर ने प्रसन्न होकर अपने एक शूद्र दास को एक विख्यात धार्मिक पुत्र होने का वरदान दिया, जिसकी जाति कायस्थ नाम से जानी जायेगी, क्योंकि उसकी कथा से (शरीर) असंख्य गुणों से युक्त कूटनीतिक व्यक्ति उत्पन्न होंगे। कायस्थों के चेदिमण्डल में दक्षिण कोसल की ओर परावर्जन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कायस्थों को समाज में सम्मान प्राप्त था। कलचुरियों के राज्य में अनेक विद्वान कायस्थ रहते थे। कायस्थ हिसाब—किताब भी रखते थे और कारकूनी किया करते थे। कई लेखों में इन्हे “करणिक” भी कहा गया है।<sup>71</sup>

कलचुरि काल में इनकी स्थिति अच्छी थी। विभिन्न स्थानों से विद्वान कायस्थ यहां आये और स्थाई रूप से बस गये।

#### 5. शूद्रः—

प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना में चातुर्वर्ण में चौथा और अंतिम वर्ण शूद्र को माना गया।<sup>72</sup> इसके भी प्रत्यक्ष उल्लेख दक्षिण कोसल समाज के सन्दर्भ में नहीं मिलते। दक्षिण कोसल में शूद्रों की वही स्थिति रही होगी, जैसे देश के अन्य भागों में शूद्रों की स्थिति थी।<sup>73</sup>

शूद्र शब्द की उत्पत्ति का प्रथम प्रयास वादरायण के वेदांतसूत्र में मिलता है। पुराणों में शूद्र शब्द का मूल शुच माना गया है तथा यह कहा जाता है कि जो शोकाकुल होकर इधर—उधर दौड़ता है, निर्बल और निस्तेज है।<sup>74</sup> शूद्रों की स्थिति का ज्ञान साहित्यिक साक्ष्यों में अनार्य कहा गया है। प्रमाणों से इसी बात का पता चलता है कि जिन दासों से आर्यों का संघर्ष हुआ। उनकी प्रबल शाखा का नाम शूद्र था। सभी वर्गों की सेवा करना इनका प्रथम कर्तव्य था। इस वर्ग को समाज में सृष्टिरूपी पुरुष का पैर माना गया है। यही कारण था

कि कार्यों पर आधारित नवीन जातियों का जन्म हो गया था। जैसे— केवट, मल्लाह, बढई जाति की उत्पत्ति हुयी। इसी प्रकार तेल बनाने का काम करते वाला तेली जाति के थे।

शराब बनाने वाले को कालार जाति आदि अनेक जातियां बन गईं। कलचुरि नरेशों के अनेक अभिलेखों में रूपकारों एवं शिल्पियों के उल्लेख मिलते हैं। ये अपने यांत्रिक कला में पारंगत थे। यथा— भासला<sup>75</sup> सम्पुला<sup>76</sup> चिटुका<sup>77</sup> आदि।

कुछ वर्गों के शूद्रों का अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ, शौर्य, प्रशासन एवं व्यापार, वाणिज्य से पृथक था, केवल इनका कार्य सेवा में आसक्त रहें।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वियोगी, पं० मदन लाल— जातक कालीन भारतीय संस्कृति, पृ० 132
2. मिश्रा बलदेव प्रसाद, छत्तीसगढ़ परिचय, पृ० 104
3. हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र— पी०पी०काणे भाग-2, "जनमन जायते शूद्रा, पृ० 420 संस्कारात् द्विज उच्यते।"
4. सिद्ध भारती भाग-2, पृ० 177-181
5. इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्राज, पृ० 94-98, 100
6. रसेल, आर०ही० एवं हीरालाल, दी ट्राइक्स एंड कारस्टस आफ दी सेन्ट्रल प्राविंसेज आफ इण्डिया भाग-1, 11, पृ० 3-537
7. प्यारे लाल गुप्त— प्राचीन छत्तीसगढ़ सन् 1973, पृ० 309
8. काणे, पी०वी० धर्मशास्त्रों का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 143-48
9. मनुस्मृति, 4-12
10. राव, विजय बहादुर, उत्तर वैदिक कालीन समाज एवं संस्कृति, पृ० 82-86
11. सेरिंग— एम०ए०, हिन्दू ट्राइव एण्ड कास्ट, 6-8
12. एपि० इ० भाग 19, 28, पृ० 102, 12
13. राजगुरु, एस० एन० पूर्वोद्धत, भाग-4, पृ०- 1-94
14. शांता शुक्ला— छत्तीसगढ़ का सामाजिक, आर्थिक इतिहास (शोध प्रबंध), रवि वि०वि० रायपुर सन् 1982 ई०, पृ० 15
15. कां० इ०इ० भाग-4, खण्ड-2, पृ०- 398-575
16. एपि० इ० भाग-22, पृ० 15-231, भाग-23, पृ०- 18-20, भाग-34, 27-30
17. राजगुरु, एस० एन० पूर्वोद्धत, भाग-4, पृ०- 94-275
18. मिराशी, वा०वि० का०ई०इ०, इ०, भाग-4, खण्ड-2, पृ०-398-626
19. पूर्वोद्धत
20. एपि० इ० भाग-31, 4 पृ० 70-75
21. राजगुरु, एस० एन० पूर्वोद्धत, भाग-4, पृ०-81-85
22. ओ०हि०रि०जं०-भाग-12, पृ० 20
23. ज०एशि०सी०बं०भाग
24. रमेन्द्रनाथ मिश्र, शांता शुक्ला छत्तीसगढ़ का इतिहास सन् 1990, पृ० 30
25. प्यारे लाल गुप्त— छत्तीसगढ़ का इतिहास, सन् 1973, पृ० 203
26. कां० इ०इ० भाग-4, खण्ड-2, पृ०-409-417, 458-62

27. राजगुरु, एस0 एन0 पूर्वोद्धत, भाग-4, पृ0-94-265
28. कां0 इं0इं0 भाग-4, खण्ड-2, पृ0-409-417, 458-62
29. राजगुरु, एस0 एन0 पूर्वोद्धत, भाग-2 एवं 4, पृ0-85-120, 1-300, जैन बी0सी0 पूर्वोद्धत, पृ0 06-150
30. सी0आई0आई0भाग-4, पृ0 469-470
31. डा0 तिवारी पुष्पा, कलचुरि युगीन समाज एवं संस्कृति 2007, लोकहित प्रकाशन, दिल्ली पृ0 94
32. सी0आई0आई0भाग-4, पृ0 83-86
33. वही, पृ0 82
34. वही, पृ0 83
35. मिराशी, वा0वि0 कलचुरि नरेश एवं उनके काल, पृ0 59-61
36. सी0आई0आई0भाग-4, पृ0 83-86
37. वही, पृ0 82
38. वही, पृ0 83
39. मिराशी, वा0वि0 का0ई0इं0, इं0, भाग-4, खण्ड-2, पृ0-375-599
40. रसेल, आर0ही0 एवं हीरालाल पूर्वोद्धत, भाग-2, पृ0-351-400
41. एपि0 इ0 भाग-21, पृ0 153-57
42. राजगुरु, एस0 एन0 पूर्वोद्धत, भाग-4, पृ0- 8-17
43. कां0 इं0इं0 भाग-4, खण्ड-2, पृ0-398-652
44. गौतम धर्मसूत्र भाग-11, पृ0 29
45. राय, सिद्धेश्वरी नारायण, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ0 168
46. उपाध्याय राम जी, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति पृ0 49
47. सी0आई0आई0भाग-4, पृ0 524
48. ई0आई भाग-21, पृ0 165
49. सी0आई0आई0भाग-4, पृ0 467
50. रमेन्द्रनाथ मिश्र, शांता शुक्ला छत्तीसगढ़ का इतिहास सन् 1990, पृ0 31
51. मिश्र, प्रभास चन्द्र पालि निकायों में प्राचीन भारत की सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं- पृ0 118-126
52. पाण्डेय राजबली हिन्दू संस्कार, पृ0 103
53. रसेल एवं हीरालाल, पूर्वोद्धत, भाग-2, पृ0-410-470
54. प्यारे लाल गुप्त- छत्तीसगढ़ का इतिहास, सन् 1973, पृ0 203
55. पाठक, सर्वानन्द, विष्णु पुराण का भारत, पृ0 90
56. राव, विजय बहादुर, उत्तर वैदिक कालीन समाज एवं संस्कृति, पृ0-103-4
57. दुबे, राजदेव, स्मृति कालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृ0 20
58. मनुस्मृति 8, 10
59. विष्णु स्मृति 5, 6
60. ई0आई भाग-19, पृ0-75
61. वही, भाग-1, पृ0 33
62. मनुस्मृति 8, 10

63. महाजन, मालती, पूर्वोद्धत, पृ० 197
64. मिराशी, वा०वि० कलचुरि नरेश एवं उनके काल, पृ०- 66-67
65. अलबरूनीज इण्डिया भाग-1, पृ० 125
66. सी०आई०आई०भाग-4, पृ० 430-436
67. ई०आई० भाग-21, पृ०-165
68. ओ०हि०रि०जं०-भाग-1, पृ० 192-7
69. परिहार, दिनेश नन्दिनी, प्राचीन, छत्तीसगढ़ का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन 2003, पृ० 111
70. कां० इं०इ० भाग-4, खण्ड-1, पृ०-295
71. प्यारे लाल गुप्त- छत्तीसगढ़ का इतिहास, सन् 1973, पृ० 203
72. काणे, पी०वी० धर्मशास्त्रों का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 109
73. डा० तिवारी पुष्पा, कलचुरि युगीन समाज एवं संस्कृति 2007, लोकहित प्रकाशन, दिल्ली पृ० 98
74. पाण्डेय मिथिलाशरण, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएं, पृ० 21
75. ई०आई० भाग-19, पृ०-75
76. सी०आई०आई०भाग-4, पृ० 524
77. वही पृ० 524

## नारी उत्थान में संविधान की भूमिका

डॉ० वन्दना तिवारी

हिन्दी-विभाग  
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय  
वाराणसी



प्रकृति और परमात्मा के प्रेमपूर्ण अनुबंध का नाम है नारी। सृजन शक्ति के रूप में इस संसार में जो कुछ भी सशक्त सम्पन्न विज्ञ और सुन्दर है। उसकी उत्पत्ति में नारी तत्त्व की अहम भूमिका है। भारत में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक उसकी स्थिति में हमेशा परिवर्तन होता रहा। कभी उसे अधिकार मिला, योग्य समझा गया, और कभी उससे अधिकार छीन लिया गया, अयोग्य समझा गया। समाज जब चाहता नारी को राजरानी और जब चाहता दासी बना देता। लेकिन चौरासी हजार योनियों में एक योनि होती है मनुष्य की जो सबसे बुद्धिमान होती है स्त्री पुरुष का विभाजन करने से पहले हमें उन्हें मनुष्य मानना पड़ेगा, स्त्री मनुष्य है तो उसमें भी परिवर्तन करने की ताकत है। वह समाज को बदलने की हिम्मत रखती है। समाज या पुरुष उसे कठपुतली की तरह नहीं व्यवहार कर सकता ऐसी सोच ने ही स्त्री को अपनी स्थिति को सुधारने के लिए विवश किया जिसका परिणाम यह हुआ की उसकी स्थिति में उत्थान होने लगा, कहीं उसे शिक्षा के लिये योग्य समझा गया, कहीं उसे राजनीति के योग्य समझा गया, कहीं उसे सम्पूर्ण परिवार की जिम्मेदारी देने के योग्य समझा गया।

स्त्री की चेतना उसका सम्मान उसको प्रोत्साहन देने की दिशा में इस संविधान की भूमिका सराहनीय है। संविधान ने अपनी धारा और अनुच्छेद से न केवल नारी को सुरक्षा प्रदान की बल्कि उन्हें वे अधिकार दिये जिससे समाज में उनकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो सके। संविधान निर्माण में भाग लेने वाली महिलाओं को देख हमें इस उन्नति का प्रत्यक्षीकरण होता है। लितारे, सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर, हंसा मेहता, दुर्गाबाई, सुचेता, कृपलानी, रेणुका रे, कमल चौधरी, मालती चौधरी, पूर्णिमा बैनर्जी इन महिलाओं ने संविधान निर्माण में अपना योगदान दिया हमारा लोकतन्त्र वयस्क मताधिकार पर आधारित है और यह समान अधिकार केवल राजनीति क्षेत्र में ही नहीं सभी क्षेत्रों में प्रदान किया गया है। भारतीय नारी के प्रगति इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ।

समानता अधिकार (भाग तीन मूल अधिकार)–

- 1 अनुच्छेद 14 – विधि के समक्ष समानता।
- 2 अनुच्छेद 15 – धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेद का प्रतिषेध।
- 3 अनुच्छेद 16 – राज्याधीन नौकरी के विषय में अवसर समानता शोषण के विरुद्ध अधिकार।

- 4 अनुच्छेद 23 – मानव के पण्य (विक्रय और व्यापार) और बलात्श्रम का प्रतिषेध राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्त- भाग चार।
- 5 अनुच्छेद 39 – राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति-तत्व।
- 6 अनुच्छेद 42 – काम की न्याय्य तथा मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध।
- 7 अनुच्छेद 44 – नागरिकों के लिए एक समान व्यवहार संहिता।
- 8 अनुच्छेद 325 – धर्म मूलवंश जाति या लिंग के आधार पर कोई व्यक्ति निर्वाचक नामावलि में सम्मिलित किए जाने के लिए अपात्र न होना तथा किसी विशेष निर्वाचक नामावलि में सम्मिलित किए जाने के दावा न करेगा।<sup>1</sup>

ब्रिटिश शासन काल से लेकर वर्तमान काल कानून ने अनेक अधिनियम बनाकर उनके शोषण और अत्याचार की कहानी को खत्म करने का प्रयास किया और अनेक अधिकार उन्हें दिलाया।

1. सती प्रथा निरोधक अधिनियम 1829
2. हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856
3. बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929
4. हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति अधिकार अधिनियम 1937
5. विशेष विवाह अधिनियम 1954
6. हिन्दू विवाह और तलाक अधिनियम 1925
7. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956
8. हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम 1956
9. स्त्रियों और कन्याओं के अनैतिक व्यापार पर रोक अधिनियम 1956
10. हिन्दू आवयस्कता और संरक्षकता अधिनियम 1956
11. गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम 1971
12. दहेज निरोधक अधिनियम 1961
13. दंड प्रक्रिया संहिता 1973
  - (क) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948
  - (ख) कारखाना अधिनियम 1948, खदान अधिनियम 1952 और बगान श्रमिक अधिनियम 1951
  - (ग) प्रसूति लाभ अधिनियम 1961
  - (घ) टेकाश्रम (विनियम और समाप्ति) अधिनियम 1970
  - (ङ) उपादान संदाय (ग्रेच्यूटी भुगतान) अधिनियम 1972
  - (च) समानकाम के लिए समान वेतन अधिनियम 1976
14. सती निवारक अधिनियम 1987
15. मातृत्व लाभ अधिनियम 1961
16. राज्यस्थान पुलिस नियम 1965

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे देश में महिला शोषण, अत्याचार उत्पीड़न व बलात्कार से रक्षा के निमित्त अनेक कानून बना रखे हैं ताकि नारी कानून के संरक्षण में रहते हुए पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर समाज की उन्नति व राष्ट्र के उत्थान में सहभागी बन सके। नारी शक्ति ही पुरुष की असली शक्ति है। जान कीट्स ने ठीक ही कहा है।

“Behind every Successful man there is a woman” अर्थात् हर सफल पुरुष के पीछे नारी ही होती है और इस शक्ति को कानूनी संरक्षण को प्रभावी बनाकर, हमें उसे सार्थक और सशक्त करना है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय नारियों के लिए एक नवयुग का सूत्रपात हुआ। प्रजातांत्रिक संविधान ने सदियों पुरानी दासता व असमानता की स्थिति से नारी मुक्ति दिलायी। आज महिलाओं के स्वयं जागृत होने व समाज को भी उसके दायित्वों से परिचित कराने का अवसर आ गया है। भारतीय समाज में नारी की एक विशिष्ट भूमिका रही है और वर्तमान समय में तो वह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। बदलते हुए भारत में भारतीय नारी अपनी निम्न स्थिति को ऊँचा उठाने और अपनी अलग पहचान बनाने के प्रयास में लगी है वह उस पारम्परिक चौखट को लॉघने की यथाशक्ति कोशिश कर रही है जिसमें अब तक उसे जकड़ रखा गया था जिससे बालक व बालिका समान रूप से जीने का अधिकार, शिक्षा एवं सम्मान दिलाया जा सके। सदियों की मानसिक दासता सहने के उपरान्त वह उससे सर्वथा मुक्त होने के लिए कटिबद्ध हो चुकी है। अब उसके स्वप्न उसकी मंजिल और उसकी अभिलाषा यह है कि वह पारिवारिक परिवेश से परे जिस किसी भी क्षेत्र में अपने कदम बढ़ाये उसमें उसके पदचाप सुनाई दें। नये-नये आयामों में प्रवेश कर अपना बोलबाला कायम करना अब उसकी इच्छा बन चुकी है, आज महिलाओं की चिन्तन शक्ति में उपरोक्त चेतना का संचार हो चुका है। अपराजेय महत्वकाक्षाओं, अथक परिश्रम, प्रतियोगिता की अदम्य क्षमता व दृढ़ निश्चय के कारण हो भारतीय नारी न केवल अपने देश में ही अपितु विश्व-मंच पर अपना लोहा मनवा रही है।

बराबरी के पायदान पर बढ़ती महिलाओं की प्रगतिशीलता को प्रशासन की ओर से बने इन कानूनों ने स्त्रियों को और भी अधिक आत्मविश्वासी बनाया। बड़ी कम्पनियों के महत्वपूर्ण पदों और सत्ता के गलियारों में भारतीय नारी की कामयाबी में पसीना बहाने वाली उन कामकाजी महिलाओं का बड़ा योगदान रहा है। अब तो चाहे कैसा भी पेशा हो, राजनीति, कला, साहित्य और अन्य अनेक क्षेत्रों में भारतीय नारी की आत्मविश्वासी छवि पूरी तरह निखर चुकी है, जिसके फलस्वरूप वे काफी संख्या में ऐसे जोखिम वाले पदों पर भी आसीन हो चुकी हैं। जहाँ उनका प्रवेश प्रतिबन्धित माना जाता था। जैसे- पुलिस सेवा, रेल विभाग, हवाई जहाज तथा सेना आदि।

सर्वोपरि इन्दिरा गाँधी ऐसी भारतीय हैं, जो कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं जहाँ वे अपनी अलग छवि न बनायी हो। इन्दिरा गाँधी का देश को एक शताब्दी से भी अधिक योग्य नेतृत्व व सफल शासन निःसन्देह एक भारतीय नारी की अद्भुत क्षमता का ज्वलन्त प्रमाण है विज्ञापन का क्षेत्र हो या सौन्दर्य का सुष्मिता सेन की सानुपातिक देह्यष्टि ने यह सिद्ध कर



दिखाया है कि भारतीय नारी का अनिन्ध सौन्दर्य खजुराहों की मृण्मूर्तियों में जड़ होकर ही नहीं रह गया है अपितु उसका सजीव सचेतन स्वरूप विश्व में अपनी प्रखर प्रभा बिखेर सकता है।

भारतीय नारी ने न केवल कमनीयता में ही अपनी विशिष्टता दिखलाई है बल्कि बछेन्द्री पाल के साहस व उर्जस्विता पर, जिनके साहस व जिनकी अद्वितीय हिम्मत ने हिमालय के शिखरों का स्पर्श किया है उनका नारा "हौसले बुलन्द हो तो झुकते हैं मर्द" उन्होंने सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट पर चढ़ने का रास्ता खोला। भारत वर्ष के लिए ये बहुत गर्व की बात है कि एवरेस्ट पर्वत की दुष्कर चढ़ाई करती हुई भारतीय महिलाएँ चोटी पर जा पहुँची है। 10 मई 1993 को भारत-नेपाल एवरेस्ट अभियान की उपनेत्री संतोष यादव माउंट एवरेस्ट पर दूसरी बार चढ़ने वाली महिला बनी। सौन्दर्य और साहस ही क्यों प्रशासनिक क्षेत्र में 1994 में 'रमन मैग्सेसे' अवार्ड से सम्मानित किरण बेदी ने तिहाड जेल के नरकीय जीवन को मानवीय स्वरूप देने में जिस दूरदर्शिता सूझ-बूझ निष्ठा और कल्पनाशीलता का परिचय दिया है वह निराला है, उन्हें राष्ट्रपति के वीरता पुरस्कार सहित कई सम्मानों से नवाजा गया। यही नहीं संयुक्त राष्ट्र के शान्तिरक्षण विभाग में पुलिस सलाहकार के रूप में काम करने का सम्मान भी हासिल हुआ। असाधारण सेवा के लिए उन्हें संयुक्त राष्ट्र पदक दिया गया। सिस्टम के भीतर कार्य करने के उपरान्त VRS लेकर वे सिस्टम के बाहर जाकर समाजकार्य कर देश के उत्थान में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र शेष हो जिसमें भारतीय नारियों ने नये कीर्तिमान न स्थापित किये हो। निःस्वार्थ उत्कृष्ट सेवाओं के लिए भारतीय महिलाएँ अपनी उपमा आप है श्रीमती मालती देवी चौधरी का महिलाओं के लिए किए गए उत्कृष्ट कार्य के लिए 'जमना लाल बजाज' अवार्ड 1983 में दिया गया। अलबेनिया में उत्पन्न 80 वर्षीया वयोवृद्ध नन (मदर टेरेसा) को जिन्होंने अपने आपको कलकत्ता में अपने लक्ष्यों के प्रति समर्पित कर दिया। 24 नवम्बर 1983 को महारानी ऐलिजावेथ के द्वारा राष्ट्रपति भवन में महत्वपूर्ण अवार्ड 'आर्डर ऑफ मैरिट' से सम्मानित किया गया।

"The 80 years old Albanian born nun who had dedicated herself for the destitute in Calcutta was conferred with the prestigious order of merit by queen Elizabeth at Rashtrapati Bhawan on November 24, 1983.<sup>2</sup> वर्ष 1998 में मदर टेरेसा को राजीव गांधी सद्भावना पुरस्कार प्रदान किया गया। धर्म निरपेक्षता को लेकर किए गए शानदान कार्य के लिए शबाना आजमी ने राजीव गांधी पुरस्कार प्राप्त किया।

"Shabana Azmi received the Rajeev Gandhi Award for excellence in Secularism."<sup>3</sup>

केन्द्रीय रिजर्व पुलिस की डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस डॉ० दीपा मेहता (आई.पी.एस.) को स्वतंत्रता दिवस पर उनके प्रशंसनीय कार्य के लिए पुलिस मैडल दिया गया। श्रीमती दीपा मेहता राष्ट्रपति द्वारा पुलिस मैडल प्राप्त करने वाली प्रथम महिला पुलिस

आफिसर थी। पर्यावरणविद् सुनीता नारायण जो धरती और पानी के लिए संघर्ष कर रही हैं इसी प्रकार चाहे मीडिया का क्षेत्र हो (नलिनी सिंह) या (मेधा पाटेकर) या वन्य जीवों का संरक्षण का (मेनका गांधी) चाहे साहस का क्षेत्र हो (फूलन देवी) तथा बम विस्फोट का (लक्ष्मी सुब्बा) चाहे साहित्यिक प्रतिभा की धनी श्रीमती महादेवी वर्मा को उनकी कृति 'यामा' पर वर्ष 1983 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से अलंकृत किया गया। ऐसे ही नामों में कल्पना चावला और अब सुनीता विलियम्स का भी नाम गर्व से लिया जा रहा है अरबपति महिलाओं में भी भारतीय महिलाओं की गिनती होने लगी है। विज्ञापन कम्पनियों में भी अग्रणी भारतीय महिलाओं ने अपने बुलन्द हौसले से अपने नाम को ऊँचा उठाया। अपने लगन व परिश्रम से समाज के विविध आयामों को अपनी प्रकीर्ण प्रतिभा की किरणों से उद्भासित कर रही है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संविधान पृ0 40।
2. भारतीय संविधान पृ0 60।

## कबीर की सामाजिक दृष्टि

दुर्गेश मिश्र

हिन्दी-विभाग  
इलाहाबाद विश्वविद्यालय  
इलाहाबाद



कबीर भारतीय मध्यकाल की उपज हैं, पर आज भी वे हमारे सबसे प्रासंगिक कवि हैं, यह प्रश्न विचारणीय है। वर्तमान दौर में कबीर को सामाजिक सुधारक या समाज द्रष्टा नहीं कह सकते। कबीर की चेतना मूलतः आध्यात्मिक थी। कबीर समाज-रचना के लिए किसी प्रकार के सुधारवादी कान्ति के प्रणेता न होकर मनुष्य की आत्मा की मुक्ति के लिए आध्यात्मिक संघर्ष करने वाले संत थे। वे मन को जीतने के लिए साधकों और भक्तों को प्रेरणा प्रदान करते थे। वे जब सम्पूर्ण विश्व में अनन्त समय से प्राप्त कष्टों के मुख्य कारणों पर मनन करते तो उन्हें लगता था कि अपनी इच्छाओं पर विजय प्राप्त न कर सकने के कारण ही समस्त संसार दुःखी है। उन्होंने कहा है कि क्या गृहस्थ, क्या सन्यासी सभी दुःखी है। “योगी”, जंगम, तपस्वी, अवधूत सभी दुःखी है। राजा हो या निर्धन कष्ट की परछाई से बाहर कोई नहीं है। मानवों की क्या देवता जिन्होंने सृष्टि की रचना का क्रम चलाया वे भी दुःखी है। उनके अनुसार “इस संसार में मन को जीतने वाले संत ही सुखी है।”

**ब्रह्मा, विष्णु महेसुर दुखिया जिनु महु राह चलाई हो।**

**कहै कबीर सकल जग दुखिया संत सुखी मन जीती हो।।**

बीर के अनुसार यह सारा संसार एक ही पदार्थ से उत्पन्न है। इसलिए सभी प्रकार की भेद-दृष्टिगत हैं। मनुष्य-मनुष्य में भेद तो अज्ञानता की पराकाष्ठा है। इसी तत्त्व-दृष्टि से प्रेरणा पाकर कबीर ने जाति-पाँति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच और ब्राम्हण शुद्र के भेद की आलोचना की है। इसी आधार पर उन्हें समाज सुधारक समझा जाता है। इसमें कोई शक नहीं है कि इन भेदों को दूर कर देने पर एक स्वस्थ समाज की उत्पत्ति हो सकती है। ऐसा समाज जिसमें ब्राम्हण, शुद्र का भेद न हो, छुआ-छूत न हो, जाति-पाँति न हो और मनुष्य मात्र समान समझा जाय आज भी एक कोरी-कल्पना है। परन्तु इस स्तर पर भी कबीर के विरोध का कारण आध्यात्मिक सत्य ही है। वे कहते हैं कि एक ही ज्योति सब में निहित है, दूसरा कोई तत्त्व है ही नहीं।

**“एक ही जोति सकल घट व्यापक दूजा तत्त्व न होई।**

**कहै कबीर सुनौ रै संतो भटकि मरै जानि कोई।।”**

परमेश्वर ने एक ही बूँद से ब्रह्माण्ड को बनाया है, फिर ब्राम्हण और शुद्र का भेद क्यों

**“एक बूँद ते सृष्टि रची है कौन ब्राम्हण कौन सूदा”**

जिस प्रक्रिया से अन्य जातियों के लोग उत्पन्न होते हैं, ठीक उसी प्रक्रिया से ब्राम्हण भी उत्पन्न होते हैं।

**“ जो तू बाभन बभनी जाया। तौ आन बाट होई काहे न आया।”**

इसी प्रकार यदि तुर्क मानवों से अलग होते तो माँ के पेट में ही उनका “खतना” हो गया होता।

**“जे तू तुरक तुरुकिनी जाया तौ भीतरि खतना क्यूं न कराया।”**

छुआ-छुत का विरोध भी कबीर ने इसी स्तर पर किया है। वे कहते हैं कि ब्राम्हण तुम कहते हो कि पवित्र स्थान पर भोजन करना चाहिए। बताओं कौन सी जगह पवित्र है? देखा जाय तो माँ बाप, वृक्ष के सारे फल, अग्नि, जल, गोबर, चौका, और कलछी सभी जूटे हैं। मूलतः पवित्र और शुद्ध तो वे ही लोग हैं जिन्होंने ईश्वर की भक्ति करके अपनी आंतरिक बुराईयों को नष्ट कर दिया है।

**“कहै कबीर तेई जन सूजे जे हरि भजि तजहि बिचारा।।”**

कबीर ने साधना के सभी क्षेत्रों में आडम्बरों का विरोध किया है। कबीर ने ऐसे साधकों की निन्दा की है जो बाजार में दिखाने के लिए ध्यान लगाते हैं। दिखावा करने वाले ये साधक कबीर की नजरों में कच्चे सिद्ध हैं जो मायाजाल में जकड़े हैं।

**“हाट बाजार लावै तारी। कच्चा सिद्धहि माया पारी।।”**

वे स्पष्ट देख रहे हैं कि जिन साधकों के पास लोग मुक्ति की कामना से जाते हैं वे खुद मायाजाल में फंसे हैं। साधक कहते हैं योग के अतिरिक्त सिद्धी का कोई दूसरा रास्ता नहीं है। “लुंचित” (बालों को नोच कर निकाल देने वाले) “मुण्डित” (बाल मुड़ा देने वाले), “मौनी” (मौन धारण करने वाले) “जटाधर” (जटा धारण करने वाले) ये सभी कहते हैं इसी तरह से सिद्धी प्राप्त की जाती है। “पंडित”, “गुणवान”, वीर “कवि”, “दाता” ये सभी गर्ववश स्वयं को सबसे श्रेष्ठ मानते हैं। परन्तु सत्य यह है कि यह सभी बाह्य आडम्बर के बन्धन में फँसे पड़े हैं।

**“पंडित गुनी सूर कवि दाता ए जु कहै बड़ हमही।।”**

इसी प्रकार कबीर को “पीर”, “मुरीद”, “काजी”, “मुल्ला”, “दरवेश” आदि सभी भ्रम में पड़े हुए दृष्टिगत होते हैं। इन सभी को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा है कि “कुरान” और “कतेब” पढ़ने से फिक्र से छुटकारा नहीं मिलेगा। हृदय को शांत करने से ही “खुदा” को प्राप्त करने का आनन्द मिलेगा।

**“कुराना कतेबा अस पढ़ि पढ़ि फिकरी या नहीं जाइ।**

**टुक दम करारी जे करै हाजिरा सुर खुदाई।।”**

कबीर पूजा-अर्चना तीर्थाटन, उपवास तथा रोजा नमाज को भी आडम्बर समझते थे। जप-तप, रोजा-नमाज यह सब मन को परिष्कृत करने के साधन हैं। यदि हृदय साफ नहीं है तो “ऊजू” करने से क्या फायदा, जप-मंजन से क्या होगा। मस्जिद में जाना, नमाज गुजारना या हज और काबा जाना तभी सार्थक है जब दिल में छलावा नहीं है।

**“क्या अजू जप मंजन कीएँ क्या मसीति सिरू नाएं।  
दिल महि कपट निवाज गुजारे क्या हज कावै जाए।।”**

स्पष्टतः कबीर ने जहाँ कहीं ढोंग, दिखावा, छल, धोखा, फरेब, आडम्बर, नाटक, प्रपंच, कपट देखा वहीं बिना डरे विरोध किया।

कबीर का ध्यान आर्थिक असमानता की ओर न गया हो, ऐसी बात नहीं हैं। उनके अनुसार जो गरीब है उसका कोई सम्मान नहीं करता है। जब गरीब, संपन्न के यहाँ जाता तो वह मुंह फेर लेता है किन्तु जब कोई अमीर निर्धन के यहाँ जाता है तो वह उसका सम्मान करता है। मूलतः धनी और निर्धन तो भाई-भाई यह तो ईश्वर की माया है जो दोनों दो परिस्थितियों में है। वास्तव में निर्धन तो वह है जिसके दिल में ईश्वर नहीं है।

**“निर्धन सरधन दोनों भाई। प्रभु की कला न मेटा जाई।  
कहि कबीर निर्धन है सोई। जाकै हिरदै नाम न होई।।”**

कबीर को जितना क्रोध सामाजिक और धार्मिक समानता के प्रति है उसका सौवां हिस्सा भी आर्थिक विषमता के प्रति नहीं है। क्योंकि वे धनी और निर्धन का होना ईश्वर की कला का परिणाम मानते थे। क्योंकि वे मानते थे कि भगवान ने जिसके लिए जितना निश्चित किया है, उसे उतना ही प्राप्त होगा। चाहे जितना सिंर खपाया जाय उसमें एक राई न कम हो सकता है न एक तिल अधिक।

**“जाकौ जेता निरमया, ताकौ तेता होई।  
राई घटै न तिल बढ़ै जौ सिर कूटै कोई।।”**

जीवन की सुविधाएं, सुख-दुख अपने ही कर्मों का भाग है। वस्तुतः कबीर भौतिक वैभव को महत्त्व ही नहीं देते थे। विश्व का सम्पूर्ण वैभव उनके लिए बेकार था। उनकी नजरों में वैभव के प्रतीक हाथी, घोड़े और शक्ति के प्रतीक द्वात्र ध्वजा ये सब बेकार है। उनके अनुसार इससे अच्छा तो भिक्षा-वृत्ति है क्योंकि भीख मांग कर जीवन व्यतीत करने वाले साधकों का समय ईश्वर के स्मरण में बीतता है।

**“कबीर हय गय गैबर सधन धन, छत्र धजा फरराई।  
ता सुख थै भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाई।।”**

कबीर ने भेद-भाव के सभी बंधनों को तोड़कर भक्त के रूप में जिस मानव को रखा है, वह मनुष्य व्यक्तित्व के विकास की सम्पूर्ण संभावना को खत्म कर उसे ईश्वरतत्त्व के स्तर तक पहुँचा देने वाला है। कबीर ने कहा कि हे प्रभु। निरंतर तुम्हारा ध्यान करते हुए मैं तुममें लीन हो गया।

**“तू तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ।  
वारी तेरे नाउं परि, जित देखौं तित तू।।”**

कबीर का यदि कोई समाज दर्शन है तो वह मानव के वाह्य जीवन को नैतिक आचरण की मर्यादा में बाँधने वाला, उसके हृदय को साफ करने वाला और उसकी आत्मा को विश्वात्मा में लय करे उसे साहित्य मानव धर्म की ऊँचाई तक ले जाने वाला है। उनका लक्ष्य मनुष्य ही है। उन्होंने मनुष्य को ही अध्यात्म-प्रेरणा से मंडित करना चाहा था। यह

दूसरी बात है कि जिस समाज में मनुष्य चरित्रवान, नैतिकता से पूर्ण एवं भेदभाव की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर विश्वात्मा से तादात्म्य करने वाले होंगे वह समाज स्वयं ही एक आदर्श समाज बन जायेगा। इसी अर्थ में कबीर को समाज-सुधारक कहा जा सकता है। सच्चे अर्थों में वे मानव धर्मा थे।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कबीर ग्रन्थावली – डॉ० तिवारी पद 105 पृष्ठ संख्या-61
2. कबीर ग्रन्थावली – वही पद पृष्ठ संख्या-106 पद 181
3. कबीर ग्रन्थावली – वही पद 185 पृष्ठ संख्या-108
4. कबीर ग्रन्थावली – वही पद 192 पृष्ठ संख्या-112
5. डॉ० गुप्त साखी 17 पृष्ठ संख्या-78
6. कबीर ग्रन्थावली (ना०प्रा०स०) पृष्ठ संख्या-302

## क्षेत्रिय दलों का बढ़ता वर्चस्व (एक नजर विहार के परिदृश्य में)

**डॉ० अशोक कुमार त्यागी**

(पूर्व) सहायक प्राध्यापक  
महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट  
महाविद्यालय ग्वालियर, (म०प्र०)



**सन्तोष कुमार उपाध्याय(शोध छात्र)**

महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट  
महाविद्यालय ग्वालियर, (म०प्र०)

चुनाव सम्भावनाओं का खेल है और जिस तरह चुनाव में उतार-चढ़ाव अपने चरम पर है ऐसे में चुनाव के बाद की सम्भावनाओं के गहरे और तर्क संगत आकलन की आवश्यकता बनी रहती है विहार में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने जितनी रैलियों को सम्बोधित किया ऐसा पहली बार बिहार में हुआ जब भारत के प्रधानमंत्री इतनी अधिक रैलियों को सम्बोधित किए। बिहार में इसबार अगड़े पिछड़े और हिन्दू मुसलमान मामला काफी तूल पकड़ता दिखाई दिया और वोटों का धुवीकरण बहुत ही तेजी से हुआ वर्ष 2010 के चुनाव में 145 सीटों पर जीत 15000 से कम वोटों के अन्तर से मिली थी। इसके 48 सीटों पर तो अन्तर 5000 से भी कम था। इन 48 सीटों में जदयू को 17 राजद को 12 भाजपा को 11 और अन्य को आठ सीटे मिली थी। चुनाव के गणित में इन छोटे-छोटे अन्तरों से मिली जीत हार के सभी कारण को उलट-पुलट कर रख देती है<sup>1</sup>। इसबार बिहार में चुनाव के पहले ऐसी उम्मीद की जा रही थी कि विकास का मुद्दा वाली सरकार सभी मुद्दों पर भारी पड़ेगी भारत के लिए बिहार का योगदान औद्योगिक उत्पादन में आज भी दो प्रतिशत से काफी नीचे है। सकल घरेलू उत्पाद में बिहार का योगदान 2001 से 2010 तक मात्र 2 प्रतिशत था, आज भी इसमें नाममात्र की भी बढ़ोत्तरी नहीं हुई है। दूसरी ओर 2001 से 2010 के बीच महाराष्ट्र का योगदान 16.1 प्रतिशत गुजरात का 9 प्रतिशत तमिलनाडू का 7.9 प्रतिशत आन्ध्रप्रदेश का 7.6 प्रतिशत था आज इन चारों प्रदेशों का भारत के सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 44 प्रतिशत से भी जादा है। प्रतिव्यक्ति आय में भी बिहार काफी पीछे है। मधेपुरा और सुपौल जिले में भी आज भी प्रति व्यक्ति मासिक आय 750 रूपये से कम है।

बिहार जैसे राज्य की कुल जनसंख्या के नब्बे प्रतिशत से ज्यादा व्यक्ति गाँवों में रहते हैं और उनका मुख्य पेशा कृषि है, वही पिछले पाँच सालों में खेती योग्य भूमि में वृद्धि आधा प्रतिशत से भी कम हुई है और प्रति हेक्टेयर उत्पादन दरें भी न के बराबर हैं। सारा

बिहार जाति और धर्म के आधार पर बँटा हुआ दिखाई देता है। ध्रुवीकरण अपने उच्चतम स्तर पर है। शायद इसलिए चुनावी महाकुम्भ में बिहार के विकास की बात नेताओं को बेमानी दिखायी देती है। चुनाव प्रचार में ऊल, जुलुल बयान, भड़काने वाले भाषण और अनर्गल आरोप—प्रत्यारोप का सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा, पुरानी कहावत है यथा राजा तथा प्रजा जो मनु के समय के राज्य में चरितार्थ हुआ करती थी, लेकिन लोकतन्त्र में बात उलट जाती है, यथा प्रजा तथा राजा यानी जैसी प्रजा होगी वैसा ही हमारा राज्य होगा आज लोकतन्त्र में सरकार को आम जनता दिखती है और चुनाव में मतदान की शक्ति आम जनता का सबसे बड़ा हथियार होता है<sup>2</sup>। बिहार में महागठबन्धन सरकार के सत्तारूढ़ होते ही समाजिक राजनीति की एक नई आधारशिला भी रख दी गई इसका कारण महागठबन्धन सरकार में नीतीश कुमार की जदयू और लालूप्रसाद यादव की राजद के साथ कांग्रेस का साझीदार होना है। यह साझीदार सामाजिक समीकरण की एक नई तस्वीर पेश कर रही है नीतीश कुमार ने इसके पहले भी साझा सरकार चलाई थी, लेकिन यह साझा सरकार पिछली साझा सरकारों से कई मायनों में भिन्न है एक समय नीतीश कुमार और लालू अलग सामाजिक समीकरण के साथ—साथ अलग सोच और भिन्न तौर—तारीकों वाली राजनीति का नेतृत्व करते थे। दोनों के मिलन ने बिहार के राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य को बदलने का काम किया। महागठबन्धन सरकार का नेतृत्व सम्भालने से पहले नीतीश कुमार 17 साल तक भाजपा के सहयोगी रहे। उन्होंने लगभग 9 वर्षों तक उसके साथ गठबन्धन सरकार भी चलाई वह 2005 में भाजपा के सहयोग से ही लालू की बिहार में मजबूत राजनीतिक पकड़ को समाप्त करने में सफल रहे थे। नीतीश कुमार ने लोगों को भरोसा दिलाया की वह बिहार की तकदीर बदल देंगे। उनकी बातों पर बिहार की जनता ने इस हद तक भरोसा किया कि दो बार भाजपा—जदयू गठबन्धन को सत्ता सौंपी।

नीतीश ने 2013 के अन्त में जब नरेन्द्र मोदी के मुद्दे पर भाजपा से अपना नाता तोड़ा था तो शायद उन्होंने भी यह नहीं सोचा होगा कि अपनी राजनीतिक नैया पार लगाने के लिए उन्हें अपने चिर प्रतिद्वन्दी लालू का सहारा लेना होगा। लेकिन बिहार के जनादेश ने यह साबित कर दिया कि नीतीश के फैसले को जनता ने स्वीकार कर लिया। बिहार के इन चुनावों पर नीतीश की तरह लालू का भी राजनीतिक अस्तित्व दाँव पर था। लगातार चुनाव हारकर राजनीतिक रूप से हाशिए पर पहुँच गए लालू के लिए कुशासन और जंगलराज की अपनी छवि से अकेले दमपर उबर पाना लगभग असम्भव था। अगर जदयू राजद और कांग्रेस के साथ गठबन्धन कर चुनाव में न उतरते तो सम्भवतः लालू को एक और करारी हार का सामना करना पड़ता। शायद उन्होंने भी यह अनुभव किया कि तेजी से आगे बढ़ती भाजपा का सामना करने के लिए उन्हें नीतीश के साथ अपनी प्रतिद्वन्दिता को किनारे रखना होगा। बिहार में जो महागठबन्धन बना उसके पीछे तीनों घटक दलों जदयू, राजद, और कांग्रेस की अपनी— अपनी राजनीतिक मजबूती थी। लेकिन इसकी कल्पना शायद इन दलों की भी नहीं रही होगी कि उनका यह प्रयोग इतना सफल सिद्ध होगा। पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश उन राज्यों में शामिल है जहाँ अगले साल दो साल में



विधान सभा चुनाव होने है। इन दोनों ही राज्यों में कांग्रेस का जनाधार खिसक गया है। इन राज्यों में भाजपा के खिलाफ बनने वाले गठबन्धन से कांग्रेस को तो फायदा हो सकता है, लेकिन तृणमूल कांग्रेस अथवा सपा-बसपा दूरगामी नजरिये से कांग्रेस का साथ लेना शायद ही पसंद करें।

उ० प्र० में चुनाव में अभी कुछ समय है लेकिन प० बंगाल के चुनाव के लिए राजनीतिक गुणा-गणित में ममता बनर्जी हावी रही। चूंकि बिहार के प्रयोग ने राजनीतिक दलों को समाजिक ध्रुवीकरण का एक अवसर दे दिया है इसलिए यह सम्भव है कि कई दल अपनी पुरानी प्रतिद्वंद्विताओं को किनारे रखकर भाजपा को राजनीतिक हाशिये पर ले जाने के लिए गठबन्धन करने में संकोच न करें।<sup>3</sup> मुख्यमंत्री पद के दावेदार नीतीश कुमार और उनके महागठबन्धन के सहयोगी दलों तथा कांग्रेस के अग्रणी नेताओं लालू प्रसाद यादव और राहुल गांधी को शुभकामनाएं लेकिन किसने जाना समझा था कि बिहार का मिजाज एक साल में इतना बदल जाएगा। 2014 के लोक सभा चुनाव में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा की लहर पूरे राज्य में गर्मी के बढ़ते तापमान को भी पछाड़कर एक नई ऊंचाई छू गई थी। ऐसा क्या हुआ कि एक ही साल पहले अपने जिस राजनीतिक रूझान का प्रदर्शन वोटर्स ने किया था उसे एकदम से इस कदर पलट दिया। दूसरी बड़ी बात यह कि वह कौन सा राजनीतिक रसायन रहा कि 1993 से अलग-थलग रहने वाले नेता नीतीश कुमार और लालू प्रसाद यादव एक गठबन्धन के सूत्र में बंध गए और मतादाताओं ने मान भी लिया कि चाहे वे दो दशक से अलग रहे हो लेकिन कुछ तो था कि वे साथ-साथ चुनाव लड़े और सरकार भी बना लिए। सवाल यह भी है कि ऐसा क्या हुआ कि भाजपा जिसके पास गत विधान सभा में 93 सीटें थी इस बार 60 के करीब लटक गईं राजद, जदयू और कांग्रेस के महागठबन्धन को 175 से अधिक सीटों का मिलना मतादाताओं को अपनी अलग समझ का परिचायक है।

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में इन नतीजों का एक तत्कालिक असर यह देखने को मिल सकता है कि शक्तिशाली मुख्यमन्त्रियों का एक मंच उभर सकता है जो केन्द्र की मोदी सरकार पर दबाव बनाने का काम करें। अरविन्द केजरीवाल के बाद नीतीश कुमार दूसरे ऐसे क्षेत्रीय नेता के रूप में उभरे हैं जिन्होंने भाजपा को पराजित किया है। ममता बनर्जी, जयललिता, नवीनपटनायक हैं ही। इस सूची में चन्द्रबाबू नायडू का भी नाम जुड़ सकता है। अगर ऐसा कोई समूह बनता है तो राष्ट्रीय राजनीति में नए समीकरण उभर सकते हैं। हम नहीं भूल सकते हैं कि योजना आयोग को समाप्त किया जा चुका है और उसकी जगह बने नीति आयोग से अभी हर राज्य तालमेल नहीं विठा पाये हैं राज्यों की अपनी जरूरतें हैं। इन्हें पूरा करने के लिए क्षेत्रीय दलों के मुख्यमंत्री आपस में हॉथ मिला सकते हैं। भाजपा ने बिहार में बदालिए सरकार बदालिए का नारा दिया लेकिन लोगों ने यह स्वीकार नहीं किया। दूसरी तरफ नीतीश और लालू के गठबन्धन की पहली रैली जब गांधी मैदान में हुई तो उसमें इन दोनों नेताओं के तेवर अलग-अलग दिखते थे। जहां नीतीश सुशासन की बात करते तो लालू अगड़ों पिछड़ों की लड़ाई की बात दोहराते नजर आ रहे थे और इसी समय संघ

प्रमुख मोहन भागवत का सधा सधाया बयान आरक्षण विरोध का इतना तूल पकड़ा दिया कि मोदी की 30 रैली भी इसकी कसर पूरी नहीं कर सकी। बिहार की हार से भाजपा को कम से कम एक सीख अवश्य मिली है कि बिहार और उ०प्र० जैसे राज्यों से स्थानीय चेहरों को तरजीह देना अत्यन्त जरूरी है बिहार में भाजपा के पास कोई भी ऐसा नेता नहीं है जो भाजपा के लिए वोटों प्रतिशत को बढ़ाने की क्षमता रखता हो। ऐसे में अब भाजपा बिहार में कोई स्थानीय और साफ सुथरे छवि वाले नेता की खोज में लगेगी, ऐसा लगता है कि उ०प्र० में भी किसी दलित चेहरे को आगे बढ़ाकर विधानसभा की तैयारी की जाए। जिससे उ०प्र० की जनता मायावती सरकार के तानाशाही रवैये और समाजवादी पार्टी की सरकार के दौरान खराब कानून एवं व्यवस्था से त्रस्त रही है। ऐसे में भाजपा एक बड़े और जिम्मेदार विकल्प के रूप में उभरने की पूरी क्षमता रखती है बशर्ते वहां कोई स्थानीय पार्टी नेता विकल्प के तौर पर खड़ा दिखे।

बिहार के चुनावी नतीजे ने यह साबित कर दिया है कि लोक सभा चुनाव और विधान सभा चुनाव में समीकरण एक जैसे नहीं होते वरना महज साल भर पहले हुए चुनाव में 40 में 32 सीट जीतने वाला गठबन्धन विधान सभा चुनाव में इतनी बड़ी हार नहीं देखता। निःसन्देह मोदी अपने जनाधार से दूर रहे हैं। वांचित बर्ग राष्ट्रीय चुनावों में कांग्रेस का स्वभाविक मतदाता रहता था, लेकिन मोदी की चाय बेचने वाले और पिछड़ी जाति की छवि से आकर्षित होकर यह वर्ग पहली बार भाजपा की ओर आया इसी वजह से जिस भाजपा को जन्मभूमि आन्दोलन के शिखर पर भी उ०प्र० में 1996 और 1998 में 52 और 57 सीटें मिली थी। उसे गत चुनाव में 71 सीटें मिली तथा सहयोगी दल को दो और सीटें मिली। मोदी की रैलियों में आने वाले लाखों नौवजवानों को आशा थी कि इस सरकार में रोजगार के नए रास्ते खुलेंगे लेकिन अभी तक इस सरकार ने इस मामले में कोई गम्भीर पहल नहीं की इसी तरह मनरेगा और खाद्य सुरक्षा जैसे कार्यक्रमों को गरीबी उन्मूलन उद्योग कहकर उपहास का पात्र बनाया गया। लेकिन उनके विकल्प के तौर पर कोई ठोस योजना पेश नहीं की गई, दुर्घटना और जीवन बीमा, पेंशन, जनधन जैसी योजनाओं का स्तर भी बहुत छोटा है<sup>6</sup> भारतीय राजनीति की यह विशेषता है कि कई बार चुनाव परिणाम आम धारणा के उलट आते हैं बिहार में भी ऐसा ही हुआ। नीतीश के बाद हार जीत की व्याख्या करना आसान है तथा यह है कि जिन कारणों से भाजपा की हार हुई उनका अनुमान कोई भी राजनीतिक पंडित नहीं लगा सका। भाजपा की हार का प्रमुख कारण यही दिख रहा है कि बिहार और वहाँ के लोगों के आत्मसमान को चोट पहुँचाना भाजपा को भारी पड़ा। आत्मसम्मान के सवाल ने ही अलग-अलग विचारधारा और राजनीतिक झुकाव वाले लोगों को भी भाजपा के खिलाफ एकजुट कर दिया। सभी इससे परिचित हैं कि बिहार आजादी के बाद से विकास की दौड़ में लगातार पिछड़ता गया। वह उपेक्षा का भी शिकार रहा मेधा के मामले में तो बिहार अग्रणि राज्यों में है। लेकिन रोजगार के सीमित अवसरों के कारण वहाँ इस सुमेधा का इस्तेमाल नहीं हो पा रहा। इसके चलते बिहारी लोगों के दिल्ली और देश के दूसरे हिस्से में पलायन का सिलसिला कायम है।

राज्य के आम व्यक्ति दुसरे राज्यों में नौकरी और यहां तक कि मजदूरी के लिए पलायन करने को विवश है। दिल्ली और मुम्बई जैसी जगहों में बिहार के लोगों के प्रति उपेक्षा भाव कई बार उनके उपहास के रूप में सामने आता है।<sup>7</sup> अब बिहार में चुनाव परिणाम आने के बाद कुछ सवाल खड़े होंगे। सबसे पहले तो यही सवाल पूछा जाएगा कि क्या मोदी की सफलता का मार्च थम गया है? इसी तरह चूंकि भाजपा ने बिहार में भी किसी को मुख्यमंत्री पद के दावेदार के रूप में प्रस्तुत नहीं किया इसलिए कुछ विपक्षी नेता यह जानना चाहेंगे क्या मोदी का नीतीश कुमार और लालू प्रसाद समेत बिहारी नेताओं के एक समूह के सामने खुद को प्रस्तुत करना एक सही फैसला था। कुल मिलाकर विपक्षी सरकारें मोदी की सफलता पर आंख मूँदकर भरोसा नहीं करेंगी, बल्कि वे यह जानना चाहेगीं कि क्या सरकार शुद्ध रूप से जाति और सम्प्रदाय पर आधारित गठबन्धन राजनीति के पुराने दिनों की ओर लौट रही है। एक अहम मुद्दा जिसमें भारत की भूमिका रही अधिक महत्वपूर्ण है वह है जलवायु परिवर्तन इस मामले में मोदी पर खासा दबाव डाला जा रहा है लेकिन यह अच्छी बात है कि जलवायु परिवर्तन के मामले में सहयोग की प्रतिबद्धता जताने के साथ ही मोदी ने साफ तौर पर यह कहा है कि पश्चिमी देश अपनी जिम्मेदारियों को हल्का नहीं कर सकते।<sup>8</sup> उ० प्र० में भाजपा के विरोधी दलों में समाजवादी पार्टी, बहुजन समाजवादी, कांग्रेस और राष्ट्रीय जनतादल जो लोग सपा-बसपा की तुलना जदयू और राजद से कर रहे हैं वह एक बुनियादी अन्तर की भूलकर रहे हैं कि उत्तर प्रदेश में काशीराम और मुलायम सिंह यह प्रयोग 1993 में करके तौबाकर चुके हैं। मुलायम सिंह के साथ आने के लिए मायावती को गेस्ट हाउस कांड भूलना होगा। सपा-बसपा दोनों का जनाधार साथ आ सकता है, इसकी कल्पना कम से कम निकट भविष्य में तो नहीं की जा सकती चूंकि फिलहाल दोनों में से किसी को अपना राजनीतिक अस्तित्व खतरे में नहीं नजर आ रहा है इस लिए बिहार का प्रयोग उ०प्र० में नहीं दोहराया जा सकता है। इस देश के मतदाताओं ने एक बार नहीं बार-बार नेताओं और पार्टियों को चेतावनी दी है कि वह उनकी बहुत सी गलतियों माफ कर सकता है, लेकिन अहंकार नहीं। भाजपा के लिए बिहार एक सबक है कि चुनाव में जीत कोई तय फार्मूला नहीं होता।

दूसरा सबक यह है कि स्थानीय नेता और कार्यकर्ता कमजोर नहीं वास्तविक ताकत होते हैं। तीसरा सबक भाजपा ही नहीं सभी पार्टियों पर लागू होता है कि हमेशा अपनी पिछ पर खेलें यानी अपने ताकतवर पक्ष को कभी मत छोड़ो नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा का सबसे ताकतवर पक्ष विकास का मुद्दा है। बिहार में पार्टी ने उसे छोड़ दिया।<sup>9</sup>

### **सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. दैनिक जागरण सम्पादकीय 7 अक्टूबर 15 प्रकाशन-वाराणसी
2. वही 26 अक्टूबर 2015 प्रकाशन-वाराणसी
3. वही 22 नवम्बर 2015 प्रकाशन-वाराणसी
4. वही 9 नवम्बर 2015 प्रकाशन-वाराणसी
5. वही 11 नवम्बर 2015 प्रकाशन-वाराणसी

6. वही 14 नवम्बर 2015 प्रकाशन—वाराणसी
7. वही 15 नवम्बर 2015 प्रकाशन—वाराणसी
8. वही 18 नवम्बर 2015 प्रकाशन—वाराणसी
9. वही 19 नवम्बर 2015 प्रकाशन—वाराणसी
10. शोध सन्दर्भ 2015
11. प्रतियोगिता दर्पण 2015

## सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के आलोक में रवीन्द्रनाथ और निराला का तुलनात्मक अध्ययन

श्वेता रस्तोगी

शोध छात्रा  
हिन्दी-विभाग  
कलकत्ता विश्वविद्यालय  
फोन नं०-8013281659



साहित्य निरंतर गतिशील प्रक्रिया है। यह अपनी विस्तृत परिधि में एक ही देश, जाति भाषा के बंधन से मुक्त होकर विश्व में अबाध गति से मानवता का संचार करती है। किसी भी भाषा का साहित्यकार जब समाज की विद्रुपताओं को आत्मसात कर समय की माँग को पहचान कर उसे अपनी रचना में उकेरता है तो उसका उद्देश्य महज अपनी या किसी विशेष जाति, भाषा, समुदाय से नहीं जुड़ा होता है वरन वह पूरे विश्व को आलोकित एवं मानवतावाद की स्थापना करने के ही उद्देश्य से ही लिख रहा होता है। साहित्य और साहित्यकार 'मैं' और 'पर' की भावना से विमुक्त साहित्य और समाज के बीच सेतु का कार्य करता है। इस सम्बन्ध में हम दो भाषा के रचनाकार की बात करें तो रवीन्द्रनाथ टैगोर और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला दोनों ने ही अपनी लेखनी द्वारा विश्व को प्रभावित एवं विषमतामूलक समाज में एकता की स्थापना पर बल दिया है।

रवीन्द्रनाथ और निराला क्रमशः बंगला और हिन्दी के कवि हैं। पर जब हम इनके रचनागत वैशिष्ट्य का आकलन करते हैं तो दोनों ने ही पूरे विश्व को अपनी ज्ञान और चेतना से सराबोर करने का प्रयास किया है। इन दोनों की भाषा और पृष्ठभूमि में भले ही अंतर हो पर चेतना एवं मानव कल्याण की भावना एक सी हैं। कविगुरु रवीन्द्रनाथ बंगला साहित्य के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं तो महाप्राण निराला हिन्दी साहित्य के छायावादी कवियों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

साहित्य आदान प्रदान की प्रक्रिया हैं। दो भाषाओं के लेखकों की रचनाओं का जब हम साम्य और वैषम्य के आधार पर अंकन करते हुये अध्ययन करते हैं तो अध्ययन की यह प्रक्रिया 'तुलनात्मक अध्ययन' कहलाती है। अकादमिक अवधारणा के तहत तुलनात्मक अध्ययन एक व्यापक अवधारणा है जो दो भाषा के लेखकों की रचनाओं द्वारा दो संस्कृतियों, जातियों, भाषा, संस्कारों, सभ्यताओं में एकता स्थापित करता है। प्राचीनकाल से चली आ रही अध्ययन की यह प्रक्रिया केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसने कला, दर्शन, मनोविज्ञान, इतिहास, राजनीति इत्यादि को अपने विशाल कलेवर में समेटकर एक व्यापक परिदृश्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है।

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने तुलनात्मक साहित्य को 'विश्व साहित्य' की संज्ञा से अभिहित किया है। उन्होंने कहा है—साहित्य का उद्देश्य समाज में मनुष्यता और समानता पैदा करना है, इसलिये कोई भी रचना चाहे जिस भाषा में लिखी गई हो, उसमें भाषिक, क्षेत्रियता, एवं राष्ट्रीय संकीर्णता नहीं आ सकती।<sup>1</sup> निराला ने भी 'रवीन्द्रनाथ—कविता कानन' लिखकर यह प्रमाणित कर दिया कि दूसरी भाषा की रचना अनुवाद के माध्यम से जन-जन को प्रभावित कर सकती है।

रवीन्द्रनाथ और निराला दो व्यक्तित्वों की कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करने से पहले उनकी पृष्ठभूमि को जान लेना अत्यंत आवश्यक है। 7 मई 1861 में कलकत्ता के जोड़साको में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के गृह प्रांगण में चौदहवीं संतान के रूप में कवि मनीषी रवीन्द्रनाथ का जन्म हुआ था। रवीन्द्रनाथ ने मूलतः बंगला भाषा में ही अपनी रचनाओं को लिखा पर उनके बहुमुखी चिंतन का प्रसार केवल बंगला भाषा तक ही सीमित नहीं था, बल्कि एक भाषा या काल की सीमा का अतिक्रमण कर पूरे विश्व को अपने ज्ञान से आप्लावित किया अर्थात् उनके चिंतन ने पूरे विश्व में 'विश्वसाहित्य' का रूप ग्रहण कर लिया। बहुआयामी प्रतिभा के धनी रवीन्द्रनाथ ने अध्ययन के जिस क्षेत्र को चुना उसे अपनी लेखनी एवं रचनात्मक प्रतिभा से एक नया आयाम दिया। वे श्रेष्ठ कवि, गीतकार, कथाकार, चित्रकार, लेखक, दार्शनिक, संगीतकार, शिक्षाविद, एवं उदारवादी मनुष्य थे। उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति ही उनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का विकास और प्रसार करती है। उन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा न केवल बंगला साहित्य को ही नहीं वरन भारतीय संस्कृति और साहित्य को भी प्रभावित किया। उच्चवर्गीय परिवार में जन्म लेने के बावजूद भी जातिगत भेदभाव और विषमतामूलक समाज का विरोध में समानता एवं विश्वबन्धुत्व पर जोर दिया।

निराला का जन्म बंगाल के मेदिनीपुर जिले के महिषादल राज्य में सन् 1896 में बसंत पंचमी के दिन हुआ। बचपन से ही स्वच्छन्द प्रवृत्ति प्राप्त किया। हिन्दी, अंग्रेजी के अतिरिक्त बंगला और संस्कृत का भी गहन अध्ययन किया। इसी कारण ही इनकी रचनाओं पर बंगला का प्रभाव स्पष्ट ही दिख पड़ता है। साहित्य के क्षेत्र में निराली प्रकृति के कारण उपनाम 'निराला' हो गया। छायावादी कवियों में सर्वाधिक विद्रोही एवं क्रान्तिकारी प्रकृति के थे। अपने जीवन में गरीबी की मार झेलने तथा पत्नी, पुत्री की मृत्यु के पश्चात् भी कभी अपने विवेक को खोने नहीं दिया। उनके विद्रोही तेवर के पीछे भावुक तथा कोमल हृदय छिपा हुआ था। असहाय गरीबों के प्रति अपार करुणा से पूरित उनका हृदय था, जिसकी अभिव्यक्ति हमें समय-समय पर उनकी रचनाओं में देखने को मिलती है। महाप्राण निराला के उदात्त और ओज से युक्त व्यक्तित्व के समान ही उनका कृतित्व पक्ष भी महान और व्यापक है। कृतित्व से उनके व्यक्तित्व को अलग कर नहीं देखा जा सकता। यद्यपि उनका जीवन विरोधों एवं संघर्षों में बीता। उनकी कई रचनाएँ टुकरायी जाती रही। स्वयं उनका जीवन पर्याप्त विरोध होता रहा। उनके संघर्षों की अभिव्यक्ति को हम उनकी रचनाओं में भी देख सकते हैं।

प्रकृति के प्रति अनुराग और उसका सजीव चित्रण यूँ तो सभी कवियों की कविताओं में दिखाई देता है। क्योंकि प्रकृति प्रेरक शक्ति के रूप में उनके सृजन कर्म का हिस्सा है। प्राकृतिक उपादानों को आधार बनाकर या उनका मानवीकरण कर जगत की कूर सच्चाईयों को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करते हैं। रवीन्द्रनाथ का 'सांध्य-संगीत' कविता इसका अन्यतम उदाहरण है। इस कविता में कवि अज्ञात दुख से पीड़ित है, इसलिए वह संध्या को सम्बोधित करते हुये कहते हैं—

“बड़ो व्यथा बाजिधे प्राणे, संध्या  
तुई धीरे-धीरे आय  
काछे आय, आरो काछो आय,  
संगीतहारा हृदय आमार  
तोर बुके लुकाइते चाय”<sup>2</sup>  
अर्थात्

“प्राणों में व्यथा बजती है, संध्या  
तुम धीरे-धीरे आओ।  
पास आओ, और भी पास,  
साथीविहीन हृदय मेरा  
तुम्हारे हृदय में छिपना चाहें।”

निराला ने भी 'संध्या सुन्दरी' शीर्षक कविता में संध्या का मानवीकरण करते हुये ऐसे प्रेरक व्यक्तित्व के रूप में दिखाने का प्रयास किया है—

“दिवसावसान का समय  
मेघमय आसमान से उतर रही है  
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी  
धीरे,धीरे,धीरे

मदिरा की वह नदी बहाती आती  
थके हुए जीवों को वह सस्नेह  
प्याला वह एक पिलाती  
सुलाती उन्हें अंक पर अपने

दिखलाती फिर विस्मृति के वह कितने मीठे सपनें  
अर्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती वह लीन  
कवि का बढ़ जाता अनुराग,  
विरहाकुल कमनीय कंठ से

आप निकल पड़ता तब एक विहाग।” (संध्या-सुन्दरी)<sup>3</sup>

रवीन्द्रनाथ का प्रकृति वर्णन केवल संध्या तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वे बैशाख का वर्णन करते हुये कहते हैं।

“छोड़ों डाक, हे रुद्र बैशाख

भंगिया मध्याह्न तंद्रा जागि उठि बाहिखि द्वारे  
चेये रव प्राणी शून्य दग्धतृण दिगंतेर पारे  
निस्तब्ध निर्वाक  
हे भैरव, हे रूद्र बैशाख”<sup>4</sup>

निराला ने भी ज्येष्ठ को आधार बनाकर कविता लिखा—  
“ज्येष्ठ! कूरता कर्कशता के ज्येष्ठ।  
सृष्टि के आदि  
वर्ष के उज्ज्वल प्राणि प्रकाश।  
अंतः सृष्टि के जीवन के हे अंत।  
विश्व के हे व्याधि।  
चराचर के हे निर्दल त्रास  
सृष्टि भर के व्याकुल आह्वान अचल विश्वास  
देते हैं हम तुम्हें प्रेम आमंत्रण  
आओं जीवन—शमन, बन्धु, जीवन धन”<sup>5</sup>

इस तरह निराला और रवीन्द्रनाथ के प्रकृति वर्णन में इतनी गम्भीरता और रूद्र वर्णन दिखलाई पड़ता है। चूँकि निराला स्वभाव से ही विद्रोही थे, उनके विद्रोही मन का ऐसे भावों से एकैक्य हो जाना अपेक्षा कृत अधिक स्वभाविक है।

मानवतावाद की स्थापना हर रचनाकर का दायित्व होता है। रचना कर देना ही रचनाकर की प्रतिबद्धता को दर्शाता नहीं है। बल्कि समाज में उपेक्षित जन की पीड़ा उनकी तकलीफ, दुख संघर्षपूर्ण समाज में दीनतर होती जा रही उनकी स्थिति को भी व्यक्त करना होता है। रवीन्द्रनाथ ‘गीतांजलि’ में सर्वहारा, कृषक, मजदूर का चित्रण करते हुए कहते हैं—

“येथाय थाके सवार अधम दीनेर हते दीन  
सेड़खाने ये चरण तोमार राजे  
सबार पीछे सबार नीचे  
सब हारादारे माझे”<sup>6</sup>

निराला भी ‘दीन’ शीर्षक कविता में सर्वहारा वर्ग की पीड़ा को व्यक्त करते हुये कहते हैं—

“सह जाते हो पीड़ा उप्पीड़न की  
क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न  
और जगत की ओर ताककर  
दुख हृदय का क्षोभ त्यागकर  
सह जाते हो”<sup>7</sup>

रवीन्द्रनाथ ने सर्वहारा वर्ग की पीड़ा का एक और भी चित्रण किया है, जो पूरे वातावरण को मार्मिक बना देता है।

“तिनि गछेन येथाय माटि मेड़े



करछे चाष—चाष  
पाथर मेड़े काटछे येथाय पथ,  
खाटछे बारो मास।”<sup>8</sup>

निराला ने भी ‘तोड़ती पत्थर’ शीर्षक कविता में एक कर्मरत—श्रमरत पत्थर तोड़ने वाली स्त्री का चित्रण करते हुए सर्वहारा वर्ग की शोषित स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं।

“वह तोड़ती पत्थर  
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर  
वह तोड़ती पत्थर  
कोई ना छायादार  
पेड़ जिसके तले वह बैठी हुई स्वीकार  
श्याम तन, भर बँधा यौवन,  
नत नयन, प्रिय—कर्म—रतमन  
गुरु हथौड़ा हाथ  
करती बार—बार प्रहार  
सामने तरु—मालिका अट्टालिका प्राकार”<sup>9</sup>

रवीन्द्रनाथ एवं निराला क्रमशः दोनों ने ही प्रेमपरक कविताएँ लिखी हैं प्रेम को लक्ष्य बनाकर संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण इनकी रचनाओं में मिलता है। रवीन्द्रनाथ अपने प्रसिद्ध काव्य संग्रह ‘सोनारतरी’ में ‘मानस—सुन्दरी’ नामक कविता में अपने हृदयगत भावों को व्यक्त करते हुए कहते हैं—

“ऐसो तुमि प्रिये  
आजन्म—साधन—धन सुन्दरी आमार  
कविता कल्पना— लता।”<sup>10</sup>

निराला भी अपनी प्रसिद्ध कविता संग्रह ‘अनामिका’ में अपनी ‘प्रिया से’ शीर्षक कविता में कहते हैं—

“मेरे जीवन की है तू सरस कविता  
मेरे तरु की है तू कसुमित  
प्रिये कल्पना लता।”<sup>11</sup>

स्वच्छन्द प्रेम का उद्गार रवीन्द्र की मानस सुन्दरी कविता की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—

“आज कोनो काज नय, सब फेले दिये।  
छेदों बन्द ग्रंथ गीत, एसो तुमि प्रिय।”<sup>12</sup>

निराला की ‘प्रगल्भ प्रेम’ शीर्षक कविता में प्रेम की ऐसी ही उत्कट अभिवक्ति को हम देखते हैं—

“आज नहीं है मुझे और कुछ चाह

### अर्थ विकट इस हृदय कमल में आ तू।<sup>13</sup>

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि रवीन्द्रनाथ और निराला भले ही दो अलग-अलग भाषा के रचनाकार हैं पर उनकी मन तथा आत्मा एक सी है। बंगाल की धरती पे जन्में इन दो महान रचनाकारों ने क्रमशः बंगला और हिन्दी साहित्य के जरिये पूरे विश्व में ज्ञान, प्रेम, नैतिकता का अलख जगाने का प्रयास किया। प्रकृति चित्रण का प्रश्न हो या सर्वहारा और शोषितों की दीन स्थिति या प्रेम की तीव्र उत्कट मनः स्थिति इन सभी का नैसर्गिक एवं सजीव अंकन कवियों ने अपनी लेखनी द्वारा लेखनीबद्ध किया है। सामाजिक सांस्कृतिक प्रतिबद्धता के आलोक में भाषा, जाति और राष्ट्रीयता की संकुचित और संकीर्ण भावना को त्यागकार सृजन कौशल द्वारा सच्चे पथ प्रदर्शक की भाँति पूरे विश्व को ज्ञान, चेतना तथा विश्वमानवातावादी एकत्व की भावना को आलोकित करने का प्रयास किया है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ला राजश्री, तुलनात्मक साहित्य : व्यवहारिक प्रयोग, शुक्ला राजश्री, भूमिका, पृष्ठ संख्या -4, स्वस्ति ग्राफिक्स, कोलकता- 700001, प्रथम संस्करण -2013
2. बंधोपाध्याय सोमा, रवीन्द्र काव्य में नारी एवं प्रेम, शब्दार्थ पत्रिका, वशिष्ठ अनूप, अंक-2 पृष्ठ संख्या-31-32
3. सिंह दूधनाथ, निराला आत्महंत आस्था, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, सातवां संस्करण- 2009, पृष्ठ संख्या-27
4. शुक्ला राजश्री तुलनात्मक साहित्य : व्यवहारिक प्रयोग, सिंह मंजुरानी छायावादी काव्य और रवीन्द्र, पृष्ठ संख्या-78, स्वस्ति ग्राफिक्स, कोलकता-700001, प्रथम संस्करण -2013
5. वही, पृष्ठ संख्या-79
6. वही, पृष्ठ संख्या-80
7. सिंह दूधनाथ, निराला आत्महंत आस्था, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, सातवां संस्करण-2009, पृष्ठ संख्या-45
8. वही, पृष्ठ संख्या-96
9. [kavitakosh.org](http://kavitakosh.org)
10. शुक्ला राजश्री, तुलनात्मक साहित्य : व्यवहारिक प्रयोग, शर्मा रामविलास, शेली और रवीन्द्रनाथ पृष्ठ संख्या -58, स्वस्ति ग्राफिक्स, कोलकता- 700001, प्रथम संस्करण -2013
11. वही, पृष्ठ संख्या-60
12. वही, पृष्ठ संख्या-61
13. वही, पृष्ठ संख्या-63

## सौन्दर्य बोध – एक दार्शनिक विमर्श

पीयूष मिश्र

शोधछात्र—संस्कृत विभाग  
इलाहाबाद विश्वविद्यालय  
इलाहाबाद

Email-piyushmishra38@gmail.com



वैदिक काल से ही भारतीय मनीषियों के चेतना की अनुभूतियों का विषय सौन्दर्य तत्व रहा है। सौन्दर्य हेतु अन्य शब्दों का प्रयोग व्यवहार में होता है जैसे— सुन्दर रूप, चारु, रूचिर, प्रिय, भद्र, मधुर, श्रिय, इत्यादि। जो चित्त को द्रवित कर दे वही सौन्दर्य है।<sup>1</sup> वस्तु दृश्य, पदार्थ, व्यक्ति, इत्यादि को देखकर मानव मस्तिष्क में भिन्न—भिन्न विचार उत्पन्न होते हैं, जिससे सौन्दर्यानुभूति होती है। सौन्दर्य का स्वरूप ऐन्द्रिय है और अतीन्द्रित भी। मूलतः यह आकर्षण प्रधान है, जो मानव—जाति को अपनी ओर अनायास ही आकर्षित करती है। वस्तु रूप के अतिरिक्त सौन्दर्य देखने वाली दृष्टि में भी निहित होती है। मनुष्य को जिस वस्तु के दर्शन से, स्पर्श से आनन्द की अनुभूति होती है उसे वह सौन्दर्य नाम की संज्ञा से अभिहित कर देता है। किसी सुन्दर पदार्थ को देखने के उपरान्त मानव चक्षु आश्चर्य चकित हो जाते हैं, जो हृदय को परम आनन्द की अनुभूति करा देते हैं यही सौन्दर्य की सत्ता का आभास है। सौन्दर्य बोध चाहे प्राकृतिक उपदानों से उपस्थित हो, कला के विषय से हो, साहित्य या संगीत से हो, वस्तुरूप दृश्य से हो, उनमें एक विशिष्ट जातीय साम्यता मूलतः अनुस्यूत ही रहती है। सौन्दर्य बोध एक मूल्यपरक चिन्तनात्मक अवधारणा है जो आत्म साक्षात्कार से उत्पन्न होकर अनुभव, विचार एवं अभिव्यक्ति पर अवलम्बित होती है। वाह्य रूप सत्य वस्तुतः एक विचार है और सौन्दर्य जड़ता में विचार की सृष्टि करता हुआ अन्ततः आध्यात्मिकरण की प्रक्रिया में समाविष्ट हो जाता है। सौन्दर्य मात्र कल्पना नहीं बल्कि जीवन एवं जगत् के सत्य का स्पष्ट प्रकटीकरण है।

प्रस्थानत्रयी ग्रन्थों में अग्रणी उपनिषद् वाङ्मय को अध्यात्म एवं दर्शन का अद्वितीय स्रोत माना गया है। इसका मूल प्रतिपाद्य विषय है आध्यात्मिक तथा दार्शनिक चिन्तन। लेकिन इस चिन्तन का अनुभव शून्य में तो किया नहीं जा सकता। तत्त्वज्ञानी ऋषिगण हो, मानवजीवन तो इहलौकिकता में निबद्ध है। एक के बिना दूसरे की कैसी अवधारणा? वैदिक ऋषियों की भाँति दार्शनिक चिन्तक भी सौन्दर्य चेतना से शून्य नहीं थे। उसके द्वारा प्रचलित दार्शनिक सिद्धान्तों में कही स्फुट तो कहीं अस्फुट रूप से सौन्दर्य की विवेचना प्राप्त होती है। आध्यात्मिक चिन्तन में सौन्दर्य को नाद, रस तथा वस्तुब्रह्म के रूप में जानते हैं। उपनिषदों की अवधारणा है कि चराचर जगत् भी एक प्रकार की कला का परिणाम है, जिसमें सौन्दर्य ही सौन्दर्य व्याप्त है<sup>1</sup> इस दृश्य जगत् रूपी कलाकृति को देखकर इसके

कुशल कृतिकार का अनुमान सहजता से लगाया जा सकता है, जिसने अपनी इस कृति में कितने भिन्न-भिन्न रूपों के अलौकिक रंग भरे हैं। सम्पूर्ण चराचर की रचना करने वाले परमेश्वर ने विचार किया कि “मैं ब्रह्माण्ड की रचना करना चाहता हूँ उसमें ऐसा कौन सा तत्व डाला जाए कि जिसके न रहने पर मैं स्वयं भी उसमें न रहूँ अर्थात् मेरी सत्ता स्पष्ट रूप से व्यक्त न रहे और जिसके रहने पर मेरी सत्ता की स्पष्ट प्रतीति होती रहे।<sup>2</sup> वह परम ब्रह्म अपनी चेतना को समस्त जागतिक उपादानों में समाहित कर उसे अत्यन्त आर्कषक एवं सुन्दर बना दिया है। संसार रूपी विचित्र रचना को आश्चर्यपूर्वक देखकर मनुष्य भौतिकता से परे परमेश्वर की अपनी प्रज्ञा चक्षु से साक्षात्कार करता है।<sup>3</sup>

विस्मयात्मक जागतिक सौन्दर्य के प्रत्यक्ष होने पर दिव्य शक्ति रूपी कर्ता का ज्ञान स्वतः हो जाता है। जो सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, सर्वरूप, सर्वज्ञ, कारण तत्व पुरुषोत्तम यहाँ इस पृथ्वी लोक में है वहीं वहाँ परलोक में भी है। परमात्मा अखिल ब्रह्माण्ड में परिव्यक्त है। परम पद ब्रह्मा परमेश्वर अपनी शक्ति के सहित नाना रूपों में प्रकट है और यह सारा जगत् बाहर-भीतर उन एक परमात्मा से ही व्याप्त होने के कारण उन्हीं की लीला भूमि का सौन्दर्य-रूप है।<sup>4</sup> सौन्दर्यानुभूति आलम्बन के बिना सम्भव नहीं है। ये सकल सांसारिक अवयव आलम्बन के ही आधार हैं जो मनुष्य को अतीन्द्रिय सौन्दर्य बोध की ओर प्रवृत्त करते हैं। अनुभूतिगम्य सत्-तत्त्व, सौन्दर्य का रूप धारण करके हमारे अन्तःकरण को आनन्दित करता है। परमसत्य सृष्टि का मूल है और मानवों का परम उपास्य है। उसके आभास से ही दृष्ट जगत् का सौन्दर्य सतत् आभासित है। चन्द्रमा तारागण, सूर्य, अग्नि इत्यादि जगत् में जो भी प्रकाशशील तत्व हैं वे सभी उस परम प्रकाश रूप परमात्मा की प्रकाश शक्ति के किसी अंश को पाकर ही प्रकाशित होते हैं। इस तरह सम्पूर्ण जगत् उन जगत आत्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित होकर अपनी सौन्दर्य की सुन्दरता को प्रसारित कर रहा है।<sup>5</sup> इसीलिए उसे ज्येतिषां ज्योतिः कहा गया है।<sup>6</sup> “अम्बरात्नधृते” अर्थात् पृथ्वी से लेकर आकाश पर्यन्त समस्त विकारों को धारण कर वह परमतत्व सारी प्राकृतिक चेतना को सुन्दरता से अभिभूत कर दिया।<sup>7</sup> पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मनु, बुद्धि और अहंकार-इन आठ प्रकार की अपरा प्रकृति को धारण करने वाला जीव रूप चेतन तत्व निखिल का अधिष्ठान है।<sup>8</sup> चक्षु-श्रोत्रादि इन्द्रियों एवं आदित्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवताओं की चेष्टा इसी प्रकाश रूप तत्व के अधीन होती है।<sup>9</sup> जगत् की यथार्थता का ज्ञान ही सत्य को जानता है। उस सत्य से सर्वत्र परिपूर्णता है तथा इसी परिपूर्णता में वैचित्र्य है जो सौन्दर्य को प्रकट करता है। यही पूर्ण सत्य शिव है तथा शिव ही सुन्दर है। यही एकीभूत त्रिपुटि “सत्यम् शिवम् सुन्दरम्” के रूप में आनन्द धनराशि है। सम्पूर्ण चराचर में व्याप्त सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, औषधि, रसादि सभी उस ‘सत्यम् शिवम् सुन्दरम्’ स्वरूप वाले परमेश्वर के ही प्रतीकात्मक उपादान हैं।<sup>10</sup> उसी विराट पुरुष की कृपा से इन सभी में सामर्थ्य का संचार होता है। उस निराकार ब्रह्म का प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला जगत् उस विराट पुरुष का साकार रूप है।<sup>11</sup> अग्नि द्युलोक ही मानों उस विराट परमेश्वर का मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनो नेत्र हैं, समस्त दिशाएं कान हैं, नाना छन्द और ऋचाओं में

विस्तृत चारों वेद वाणी है, वायु प्राण है, सम्पूर्ण जगत् हृदय है, पृथ्वी मानो पैर है। यही परमेश्वर तो समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी परमात्मा है।<sup>12</sup> अपने अन्तर्यामी का प्राणभूत ऋत विभिन्न आकारों में व्यंजित होता हुआ दृश्य-विषय रूपी सौन्दर्य को धारण करता हुआ ज्योतिर्मय सा शोभित हो रहा है। वहीं परमात्मा सारे लौकिक उपादानों में अपनी माया शक्ति से अनेकानेक रूपों में समाविष्ट हो अपनी ही अद्वितीय सुन्दरता का प्राकट्य है।<sup>13</sup> खं अर्थात् आकाश के रूप में परमात्मा अखिल विश्व को आच्छादित किए हुए हैं। उसी की शक्ति से वाणी सामर्थ्यवान होकर मुखरित होती हुई जगत् व्यवहार का कारण बनती है। यहाँ परमात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है। मनुष्य की शरीर रचना उस परमतत्व की ऐसी कृति है, जिसको देखकर देवतागण भी आह्लादित होते हैं। सम्पूर्ण जागतिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसी की लीला की सुन्दरता से मुमुक्षु-तत्त्वज्ञानी परमानन्द की अनुभूति करते हुए कहते हैं कि –

**तेरी ही छवि देख रहा हूँ प्रस्तर, तरुवर, कानन में।  
तेरे सारे रंग समाहित जगत् रूप इस उपवन में।।**

परमतत्व रसरूप है, इसीलिए जब जीव ब्रह्मानुभव करता है तब वह परमानन्दित होता है। परमात्मा में ही वास्तविक आनन्द, रस तथा सौन्दर्य है। जब सत्, चित् आनन्द स्वरूप एकमात्र परमात्मा ही है तो दूसरा कौन आनन्द दे सकता है। समस्त रसों का आनन्द लेने वाला भी वही रसराज है। अखिल विश्व सौन्दर्य के मूल में रस है और इस रस का मूलाधार वह परमेश्वर ही है।<sup>14</sup> उस पूर्णतत्व से उद्भूत होने के कारण इस जगत् में भी पूर्णता का दर्शन होता है। उसके द्वारा चित्रित इस समष्टि सृष्टि रूपी कला चित्रण का प्रत्येक चित्र पूर्ण सुन्दरता का उन्नयक है।<sup>15</sup> अहम् ब्रह्मास्मि, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, तत्त्वमसि ये सभी आप्त वाक्य उस सच्चिदानन्द स्वरूप वाले सौन्दर्यागार की ही सुन्दरता भान कराते हैं। ब्रह्म ज्ञान का आयतन सत्य ही है।<sup>16</sup> सत्य ही ब्रह्म का स्वरूप है<sup>17</sup> जो सत् तत्त्व है वह तू ही है, जब व्यक्ति सबकी आत्मा की सुन्दरता में अपनी आत्मा तथा स्वात्मा के सौन्दर्य में समस्त भूतों को देखता है तब वह स्वयं ब्रह्म ज्ञानी की श्रेणी में आ जाता है। वह निर्णीत ज्ञान कर लेता है कि यह जो कुछ भी कलात्मक स्वरूप दृष्टिरूप है वह सब निश्चित रूप से ब्रह्म ही है।<sup>18</sup> इस प्रकार उपनिषदों में साक्षात् कामधेनु हैं जिनसे निःसृत ब्रह्म विद्यारूपी प्य का पान कर उस परम रस रूप सौन्दर्य का अनुभव मुमुक्षु व्यक्ति करता है। सकल ब्रह्माण्डीय सौन्दर्य बोध होने के उपरान्त यह पंक्ति अन्तर्मन में स्वतः उद्भूत हो जाती है कि जिसकी रचना इतनी सुन्दर वो कितना सुन्दर होगा।

### **सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. सुष्ठ उणत्ति चितं यत् द्रवयति तत् सौन्दर्यम्।
2. स ईक्षांचक्रे। कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति।। प्रश्न उप० 6.3
3. स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यु वावदिषिति। स एतमेव पुरुषं।

4. यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह मृत्योः समृम्युमाप्नुति य इह नानेव पश्यन्ति ।। कठ० उप० 2.1.10
5. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतोभान्तिकुतोऽयमग्निः ।  
मतेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।। श्रेता० उप० 6.14
6. ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमयः परमुच्यते । गीता 13.17
7. तस्मान् क्षरत्यश्नुते चेत नित्य व्यापित्वाभ्यामक्षरं परमेव ब्रम्हा । ब्र०सू०शा०भा० 1.3.10
8. भूमिरापोऽनलो..... धार्यते जगत् । गीता 6.4.5
9. ज्योतिषाम् अदित्यानाम् अपि तद् ज्ञेयं ज्योति । गीताभाष्य
10. अतः समुद्रागिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपा ।
11. ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्जगत्यां जगत् । ई०उप० 1
12. अग्निर्मूर्धा चक्षुषीच्चन्द्रसूर्योदिशाः दिशः श्रौत्रे वाग् विवृताच वेदा ।
13. इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते । बृहदारण्य० उपनिषद् 2.5.19
14. रसो वैसः । रस होवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति । तैत्तरीय उप० 2.7.1
15. पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्मुदच्यते । पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते । बृहदारण्यक उप० 1.1
16. 'सत्यमायतनम् ।' केन०उप० 4.8
17. 'सत्य ब्रहोति ।' बृहदारण्यक उप० 5.4
18. 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' । छान्दोग्य० उप० 3.14.1

## Educational Supervision And Its Role In To Improve The Quality Of Education

### Priyanka Singh

M.A. Education  
University of Allahabad,  
Allahabad  
E-mail: [pri93yankasingh@gmail.com](mailto:pri93yankasingh@gmail.com)



**ABSTRACT:** It is important in educational administration to ascertain that educational activities are carried out in accordance with the laid down educational goals and objectives. Hence, supervision, whether it is internal or external should be seen as a conscious effort directed towards finding ways of improving the outcome of each school or educational institutions. Access to education and quality in education are the major issues for the nations of the Developing world. Consequently a spurt is seen in endeavors to promote quality in education through differed means and mechanism. Educational supervision is seen as an effective mechanism for quality assurance in the schools as is evident from the roles assigned to the supervising officers. However, the supervisory functions to be performed by the education officers are found to be impeded by several factors that should be redressed to make educational supervision contributory to quality improvement endeavors. The paper, therefore, focused on the how educational supervision do important role in educational administration. At the end of the paper, we will know how educational supervision help for improving the quality of education.

**KEYWORD:** Introduction, The basic principal of education supervision, Classification of educational supervision, Type of educational supervision, Concept of quality, Quality in education, How educational supervision help to improve quality of education, Conclusion, References.

**INTRODUCTION:** Many countries across the globe have attempted to restructure their educational supervision Services to enhance educational quality. This desire for restructure is stimulated and/or inspired by disappointment probably with the effectiveness of supervision and by the recent Drift towards more school independence. Indeed, the ability of schools to use their greater autonomy effectively will depend to a large extent on the support services on which they can rely, while

supervision may be essential to guide them in their decision-making and to monitor their use of resources.

**Bernard and Goodyear said** “supervision is an intervention that is provided by a senior member of a profession to a junior member or members of that same profession. This relationship is evaluative, extends over time, and has the simultaneous purposes of enhancing the professional functioning of the junior member(s), monitoring the quality of professional services offered to the clients she, he, or they see(s), and serving as a gatekeeper of those who are to enter the particular profession”.

Education supervision means an all out effort of the school officials directed towards providing leadership to teachers and other educational workers for the improvement of institution. It involves both human elements are the pupils, parents, teachers and other employees, the community and other officials of the state. On the material side money, building, equipment, playgrounds etc. are included. Besides these, the curriculum, methods and techniques of teaching also come under the scope of supervision.

Teaching is a creative act. A teacher has to coordinate his thought with action. So the basic psychological problem underlying supervision is to see that the teaching is improved through supervisor is able to secure integration between teaching practices and sound principles of education on which the practices are based.

As commonly used, the term ‘supervision’ means to guide and to stimulate the activities of other with a view to their improvement it attempts to develop instructional programmes according to the needs of the youth of modern democratic society and also to provide materials and methods of teaching for enabling the children to learn more easily and effectively. There are various definitions of supervision in educational literature.

Educational supervision is a term used to identify the work duties of administrative workers in education. Educational supervisors make sure the educational institution operates efficiently and within the legal requirements and rules. The purpose of this field is to make sure teachers and other faculty members are doing what they’re supposed to be doing and that students are receiving the best education possible.

The educational supervision is responsible for providing adequate support to the trainee for the development of their learning requirements and ensuring that appropriate training opportunities are made available to acquire the necessary competencies. Through a regular appraisal process the educational supervisor should also ensure that the trainee follows a programme which meets the educational objectives as laid down by the trainee, as well as the clinical supervisor in charge of



that period of training when appropriate. Unlike the clinical supervisor, the educational supervisor may not be in direct clinical interaction with the trainee but should have a good overview of training needs. This does not mean that the same person cannot do both, though it is arguable that it is best to separate the two posts and responsibilities.

Educational supervision therefore requires time, dedication and, more importantly, adequate training to qualify for the role. Although it is recommended that educational supervisors should have an understanding of educational theories and practical educational techniques including constructive feedback, communication skills and dealing with difficulties, regrettably this is not the case. It is a matter of fact that all consultants are expected to become qualified educational supervisors with minimal training or interest. Furthermore, even those who are qualified in education find themselves taking on this role with little or no time allocation in their job plans and as an add-on to their clinical commitments. Few would disagree that very little investment has been made in this area. One of the major challenges facing postgraduate education is meeting educational demands through formal training in educational supervision. This admittedly would require time and resources. Until then it may be advisable to limit educational supervision to those qualified to do so and with adequate time allocation.

*‘Educational supervision is the set of activities designed to improve the teaching learning process. The purpose is neither to make judgment about the competence of teaching nor to control them but rather to work cooperatively with them.’*

### **THE BASIC PRINCIPLES OF EDUCATION SUPERVISION**

The basic principles of educational supervision include the following:

- 1. Purposiveness:** The need for a set purpose makes it mandatory for the agents concerned with the exercise to determine at the beginning of a teaching programme what is to be considered “poor” or “excellent”. This will enhance objectivity and productivity.
- 2. Plan:** Supervision of instruction must be planned. The supervisor should know how, when, what and where to launch his activities.
- 3. Diversity:** Supervisor should give room for the diversification of supervision. He / she should allow for intelligent creativity since too much control or coercion could lead to formalism and resentment and may create confusion.
- 4. Dialectical Relation:** Supervision should be cyclic in nature. It should provide a feedback both to the teachers as well as to the supervisor. The democratic and cooperative nature of supervision should be geared towards making the teacher become cognizant of the need for improvement.

**5. Code of Conduct:** Supervisor should ensure that he/she appears decent, responsible and respectable that he is punctual to school arriving in time, take part in the morning assembly, that he/she introduces himself/herself to the school head explaining the purpose of his visit, and that he concentrates on the particular aspect of the school he/she intends to inspect thus avoiding. The tradition to cover too wide ground in a day.

**6. Principles of Safe and Healthy Environment:** The school environment should be conducive for effective teaching-learning activities. The supervisor could do a lot to make the office, school compound a happy place for both teachers and students if he sets the right tone by creating a healthy environment.

**7. Principle of Adequate Information for Employees:** A newly recruited staff needs to know the history, objectives, roles, operation and career policies of the organization as contained in the organization's handbook. He should have access to the annual report and condition of service. The supervisor should tell the new staff his/her specific schedule of duties, level of authority and his/her immediate supervisor. He or she needs to be adequately informed about when, where and how he gets paid, the resumption and closing hours of work, the break period, annual leave, casual leave etc.

**8. Principle of Guidance:** The supervisor owes it a duty to guide job incumbents on how, what, where and when to carry out their duties. This is ensured through close monitoring and supervision. Personality improvement is important in an organization because it seems to reflect the image of the organization for which they work.

**9. Principle of Effort Recognition and Reward:** Recognition and reward for good work done when carried out promptly and publicly serves as moral booster for other staff. **According to Opinmi (2011)**, the following are some ways in which the supervisor could acknowledge the good work of his staff:

- Prompt acknowledgement and recognition of job in the presence of others.
- Follow up with a formal letter of commendation and making sure that the letter gets into his/her personal file.
- Giving a certificate of merit to such a staff.
- Giving a bonus of cash reward.
- Giving some incremental credits in the salary.
- Recommendation for promotion to the next grade.

**10. Principle of Constructive Criticism:** The main task of the level. the supervisor is to motivate his staff to operate at their fullest possible capacity. Criticism should be done constructively and privately while good work should be recognized. Poor work deserves some attention as well.

**11. Principle of Liberality:** Opportunities should be created for subordinates to aspire to leadership position. In fact, subordinates should see themselves as supervisors-in-training. At times, responsibilities should be delegated to ensure sense of responsibilities and belonging on the part of the subordinates.

**12. Principle of Encouragement:** The supervisor owes it a duty to encourage the staff to thirst for new knowledge and continue to search for new ways of carrying out their duties. This is because it has a multiplier effect on both the supervisor and the organization. Education is life long to enable the staff solve new problems. This is done through reading, discussion with senior colleagues, seminars, workshops, trainings, re-training programmes, etc.

**13. Principle of Networking:** A good supervisor develops team spirit and networks with other supervisors or senior officers within or outside the organization to tap from their wealth of experience. This will help him/her to perform better.

**14. Principle of Objectivity:** Both internal and external supervisors should be objective in their sense of judgment and decision making process. Objectivity will endear them to their subordinates.

**15. Principle of Tact:** Diplomacy is needed in dealing with subordinates and superordinates. Open confrontation which may degenerate into act of insubordination should be avoided as much as possible.

## **CLASSIFICATION OF EDUCATION SUPERVISION**

Educational supervision can be classified as follows:

**i. Instructional Supervision:** This borders on the activities which are carried out with the purpose of making the teaching and learning activities better and more result oriented for the learners.

**ii. Administrative Supervision:** This deals with the mobilization and motivation of the staff in the school towards effective performance of their duties and responsibilities.

## **TYPE OF EDUCATIONAL SUPERVISION**

The following are the types of educational supervision:

**(i) Full Supervision:** This is an external inspection carried out by a group of inspectors from the Ministry or other bodies to examine subjects taught in a school, scheme of work, lesson notes, classroom management and other physical facilities. This enables supervisors to make observations, corrections and make necessary and professional recommendations for the betterment of the educational system.

**(ii) Emergency Supervision:** This refers to the kind of inspection carried out as a result of crisis in a school setting. The supervisors are led by senior officers

with instruction to find out and investigate the remote and immediate causes of certain problem or crises in a school, for instance, riots, strikes or conflicts.

**(iii) Sample and Survey Visit:** This is an inspection meant to survey an aspect of educational Performance in the schools, for instance student attitude to the teaching of science, social sciences or commercial/arts related subjects, teacher use of instructional materials etc.

**(iv) Clinical Supervision:** This is the type of supervision in which supervisors meet with the teaching staff with the aim of developing their professionalism and instructional method.

**(v) Routine supervision:** This is the periodic visitation of schools by a supervisor or a group of supervisors to a school in order to ascertain progress and achievement or problems and difficulties in given areas and schools.

**(vi) Investigative Supervision:** This type of visit is usually carried out with the sole purpose of addressing a particular problem in the school. It could be the problem of discipline, fraud or theft of the school property.

**(vii) Special Visit:** This type of visit deals with special cases which are also specific in nature. The visit may be for the purpose of inspecting some subject area as such as English Language, Mathematics, Physics, Chemistry and Biology, or Geography, Economics, Government or Civics Education.

**(viii) Pre-opening of School Visits:** These visits are made to a location of a newly established school that is seeking for approval to provide educational services. The essence is to ensure that the school satisfies the stipulated guidelines and requirements, such as the availability of enough space, classroom sizes, staff strength with appropriate teaching qualifications, infrastructure, washrooms, water supply, etc. The visit is necessary for granting approval by the Ministry of Education, particularly a private educational institution.

**(ix) Assessment Visit:** This type of visit lasts longer than a routine visit. This visit involves looking into the various school activities and how these activities are organized and carried out.

**(x) Follow-up Visit:** This takes place after a full inspection would have been carried out in school during the visit. The inspectors keep record of relevant action taken by the school authority with reference to the recommendations that were made or the full scale visit as contained in the inspectors' report. The inspectors assessed the extent to which the action taken by the school had achieved their desired results. Also suggestions could be made where necessary for the primary purpose of improving the school and student learning outcomes.

**CONCEPT OF QUALITY:** According to Jan D. Timmer —quality is a state of mind...the relentless pursuit of excellence, of never being satisfied with what you do, how you do it and how quickly you do it. There is always room for improvement. Everything can always be done better. Quality should be a part of our soul. Quality is perceived differently by different people. Quality is not something that is bestowed by others; it is attained and maintained as a result of ceaseless efforts. Quality of a product may be good for one but not for another because it does not serve the purpose.

Quality refers to basic and essential character, the distinguishing element or characteristic of a product, service, organization or entity. Consumers look at these elements in deciding whether or not to buy particular products or services. **According to Bennis (1993)** — Quality often is not measured at all, but is appreciated intuitively. One's response to quality is a feeling, a perception that is connected intimately with our experience of meaning, beauty and values in our lives.

**QUALITY IN EDUCATION:** Quality has become a defining element of education in the 21st century in the context of new social realities. The information communication revolution, the knowledge economy and globalization are greatly influencing the next society. How to provide quality education to large numbers at affordable costs is the primary concern of developing countries. Quality makes education as much socially relevant as it is personally indispensable to the individuals. In this sense quality becomes the defining element of education. In this context, quality and excellence should be the vision of every higher education institution including teacher education. Acquisition of quality and excellence is the great challenge faced by all higher education institutions.

**HOW EDUCATIONAL SUPERVISION HELP TO IMPROVE QUALITY OF EDUCATION:** Access to and quality in education is two main objectives of all major educational policies of different governments since independence. However, the last three decades have witnessed a shift in focus from issues related to educational expansion to a focus on quality in education. This shift is an obvious reaction to a decline seen in the performance of the schools lagging far behind the rate of expansion of the schools. It was felt that merely expanding the system and injecting more resources into the system could hardly meet the goals of education and fulfill the national aspirations. Rather, the more fundamental issues are those related to the use of these resources at school level, in a way that enhances performance. Consequently, a simultaneous shift is observable in the conception of educational supervision. Supervision when interpreted in the context of quality in education connotes a mechanism of improvement other than as a means to exercise control. New

dimensions are added to the process of educational supervision and its relationship with in-school an actor that is now seen as of great significance in assuring quality in education. The formative aspects of supervision are highlighted as substantiation of its salience to ensure quality in education. The sections that follow provide a brief sketch of the meaning assigned to supervision in contemporary era to establish its relationship with quality in education. Consequently outlines of major roles of the education officers are discussed. Finally the major problems that impede the utilization of supervision functions in improving performance of schools are highlighted.

The global initiative for educational expansion has already treaded its path over a long period of time. However, studies conducted globally with special focus on quality in terms of students' performance reveals a declining status of the educational Microsystems viz. the school, in developing nations with respect to achievement of the goals leading to a growing concern over quality of the educational Microsystems the basic unit of expansion. Deliberations over the quality issue within the educational Microsystems in terms of its performance, essentially centers around three significant aspects that determine the quality of the Micro systems in a cumulative way. The significant aspects are: **(i)** the material (infrastructure and equipments) and human (learners, teachers and institutional heads) resources **(ii)** the relationships within school, between the school and the community, and between the school and the administrative level immediately above the school and **(iii)** the daily interaction between teachers and learners that are the direct determinants of performance of a school. Further, the performances of the school through the teacher student interactions are mediated by both the resource as well as the relationship factors. The issue of educational expansion had its focus on the resource factors thus facilitating access to education. However, pumping in of resources within the educational system is essential to take care of the access issue. The relevance and hence quality issue need attention toward the other two aspects as well. Educational supervision emanates out of the relationships of the educational micro system with the administrative level above the school level in the overall educational macro-system and is thus an important component of the relationship aspects of the educational micro system. As such educational supervision has a mediating impact on quality in the micro system. The quality concern thus leads to concern with how the input factors are organized and managed rather than on the strength of the resources provided. Since educational supervision is related to ensuring organization and management of the resources and is a major element of the factors determining quality, it has emerged as an important phenomena attracting serious discussions and providing a largely unexplored area for empirical investigations with the aim to make it more effective and efficient.

The origin of educational supervision could be traced back to Wood's dispatch of 1854 when the fundamental aim of bringing into existence the very concept of school inspection was to exercise authority and control. The aim of control reflects the traditional sense of supervision more communication. only referred to as inspection. Supervision, then in its traditional sense refers to over seeing by someone the work of other personnel. Thus ipso facto every administrator is a supervisor. How ever such a conception of supervision presents a narrower vision limiting it to control and evaluation of resources and personnel that could hardly satisfy the developmental and formative needs of the complex and dynamic educational micro system requiring continuous change and modification under expert guidance and control in a systematic, effective and efficient way, to sustain its relevance and vitality. In other words, to ensure quality in the educational micro system it is necessary that there exists mechanism for effective guidance along with good teaching. Consequently, the authoritarian conception of supervision with a focus on control has given way to a democratic conception of supervision with a focus on human relations and cooperative efforts of administrative personnel, teachers and headmasters, to enhance quality. The democratic perspective on supervision led to a conception of supervision as a service aimed at the improvement of the academic aspects of school, the existence of which, in almost all nations and at central, regional and local levels substantiate its significance as a quality improvement mechanism.

Supervision as a service functions both to control as well as to support the schools from outside through regular visits by the officers endowed with the task. As a service it serves a two-fold purpose. Where as on the one hand it serves to "interpret to teachers and the public the education policies of the authorities and modern educational ideas and methods", on the other hand it also serves to "interpret to the competent authorities the experiences, needs, and aspirations of teachers and local communities. Educational supervision thus catalyzes quality Assurance programs by shaping, supporting, operating and controlling the educational micro system thereby deciding the quality of education to a very great degree.

**CONCLUSION:** Supervision is justified as a mechanism to insure the growth of the educational micro system in general and of the human input factors in particular. It acts as a process of linking the teachers' previous preparation to their actual professional context. It also serves as a mechanism to possibly keep the education workers abreast of current developments and providing creative suggestions informed by analyses and discussions of research findings. Logically, supervision aims at improving curriculum and instruction thus reflecting the support functions of supervision. Supervision when conceived as a control and support service has the

immense potential to enhance quality of education provided that the mandated functions of supervision are implemented effectively.

**REFERENCES:**

1. Bhatnagar, R.P., Vidya Agrawal: educational administration, R lall book depot Meerut.
2. Verma, J.P.: Shaikshik prwandhan, Rajasthan Hindi granth academy, Rajasthan.
3. Sindhu, I.S.: educational administration and management, publisher-Pearson India, April 2012.
4. Odh, L.K: Shaikshik prshashan, Rajasthan Hindi granth academy, Rajasthan.
5. UNESCO 2013. International Institute for Educational Planning. From <<http://www.iiep.unesco.org/capacitydevelopment/training/trainingmaterials/schoolsupervision.html>> (Retrieved on 20 January 2014).
6. Rai, Ajeet Kumar and Singh Sadhana, school supervision: roles and difficulties, Shaikshik Parisamvad (An International Journal of Education) Vol.3, No.2, July 2013, pp 58 - 65.
7. Uğurlu, C. T. (2014). Current problems in terms of supervision process of school principals' views. Hacettepe Universities Eğitim Faculties Dergisi [Hacettepe University Journal of Education], 29(3), 184-196.
8. Emmanuel O. Adu<sup>1</sup>, Gbadegesin M. Akinloye<sup>2</sup> and Olabisi F. Olaoye<sup>1</sup> Internal and External School Supervision: Issues, Challenges and Way forward, University of Fort Hare, East London, South Africa 5200, Int J Edu Sci, 7(2): 269-278 (2014)



## पुस्तक समीक्षा

पुस्तक— ग्राम्य गीतांजलि  
लेखक— प्रो० योगेश चन्द्र दुबे  
प्रकाशक— शिव भारती पब्लिशर्स  
एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स इलाहाबाद  
मूल्य—200  
पृष्ठ— 96  
मो०— 0945203222



अवधी के आदि कवि अमीर खुसरों, मलिक मुहम्मद जायसी एवं महाकवि सन्त तुलसीदास जी के काव्यों ने भारतीय वाङ्मय में अवधी को जो महत्त्व दिलाया वह महत्त्व किसी अन्य लोक भाषा को उसका कोई भी कवि नहीं दिला पाया। आज जायसी के पद्मावत् एवं तुलसी के रामचरित मानस की गणना विश्व साहित्य की श्रेष्ठतम कृतियों में की जाती है।?

अवधी की श्रेष्ठता के बावजूद ब्रजभाषा एवं भोजपुरी की मिठास का आकर्षण अलग ही रहा है। ब्रजभाषा का प्रभाव ब्रज क्षेत्र से लेकर अवध में तमाम जनपदों तक छाया रहा है। प्राचीन अवधी साहित्याकाश में कुतुबन, मंझन, मुल्ला दाउद, मौलवी मुहम्मद गौस, कबीर, घाघ, नेवलदास आदि के अभ्युदय के साथ अवधी साहित्य का जन्म हुआ इसी के साथ-साथ अर्वाचीन अवधी साहित्यकारों में जैसे अशोक अज्ञानी, पढ़ीस, बेकल उत्साही, रमईकामा, बंशीधर शुक्ल, रमाशंकर यादव बिद्रोही, रफीक साहनी, युक्ति भद्र दीक्षित, सबल सिंह चौहान आदि कवियों ने अवधी साहित्य को एक नया आयाम प्रदान किया। उसी आयाम को आगे बढ़ाते हुए प्रो० योगेश चन्द्र दुबे ने ग्राम्य गीतांजलि नामक अप्रतिम कविता संग्रह को सुधी जनों हेतु प्रेक्षणार्थ प्रस्तुत किया है। कवि ने जीवन के सारभूत वह सब जो देखा, सुना, पढ़ा और समझा प्रस्तुत कृति में सरल सुबोध शैली में संजोकर रख दिया है। इसमें जीवन निर्माण एवं उत्साह, प्रेरणा तथा शक्ति प्रदान करने वाली अनेक कविताओं का संग्रह है।

कवि ने अपनी कविता “माँ सब में स्नेह भर दे” में समाज में मानवता के दमन एवं दानवता की वृद्धि रूपी जो कल्पना समाज एवं संस्कृति को समाप्त कर रही है उसका बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

मानवता चीत्कार कर रही  
दानवता फुफकार कर रही  
पीड़ित शोषित धरा विकल है  
ऋषि-संस्कृति चीत्कार कर रही।

‘जय हनुमान हरे’, ‘बाबा पवन कुमार’ नइया के खेवैया यह चित्रकूट वन नन्दन है चित्रकूट बनवा में, आदि कविताओं के माध्यम से कवि ने भगवान सीताराम एवं उनके प्रिय शंकर सुवन, हे केशरी नन्दन, बाबा पवन कुमार के प्रति निवेदित विविधि भक्ति भाव संवलित सुमधुर भावों से ओतप्रोत अवधी, भोजपुरी एवं खड़ी बोली में गुम्फन किया है।

कवि ने आधुनिक सामाजिक परिवेश में रामायण की प्रासंगिकता को अपनी व्यंग्यात्मक शैली में कविता के माध्यम से समाज के किंकर्तव्यविमूढ लोगों को जागृत करने की बात कही है।

**पहले दशरथ खुद बन जाओं इसको आज बताए कौन?**

**XX**

**XX**

**कौसल्या का चरित्र कहाँ से, इनको आज सिखाए कौन?**

**XX**

**XX**

**रामायण का भाव न जाने राम चरित अपनाए कौन?**

ग्राम्य गीताजलि के गीतपयस्विनी खण्ड के 12 गीतों के माध्यम से कवि ने अवधी एवं भोजपुरी भाषा के माध्यम से लोक चेतना की अभिव्यक्ति की है। कवि ने नव युग के निर्माण में हमारी क्या भूमिका है उसको ओज से परिपूर्ण कविता ‘ग्रामोदय से कल्प’ के माध्यम से प्रस्तुत किया।

**नव विकास का सूर्य उगेगा, तिमिर नहीं रह जाएगा।**

**गांवों में बिजली पानी हो स्वर्ग धरा पर आएगा।**

**अन्धकार कितना ही हो पर सूरज कभी न हारा है।**

**गावों का उत्थान करेंगे यह सकल्प हमारा है।**

इन कविताओं से स्पष्ट हो जाता है। कवि का जीवन गाँव की धूल से धूसरित तनों में, बंसन्त के पटोही रूपी मन में कहीं न कहीं मिट्टी की सुगन्ध अपनी मादकता को मूर्ति रूप दे रही है।

कवि की कविताओं में कवित्व के संसार उसकी अपनी माटी जौनपुर से ही मिले है लेकिन कार्ययित्री प्रतिभा मन्दाकिनी में पुण्य तट चित्रकूट से मिला है। कवि अपने गाँव का चित्र “अपनापन” इस कविता में आधुनिकता की चादर को ओढ़ नहीं रहा पर उसे अपना नहीं पुराना गाँव ही याद आता है।

**लौटा दो लौटा दो मेरे गाँव का अपनापन।**

**कहाँ गयी वो थाती माटी कहाँ वो भोलापन।।**

वास्तव में आज गाँव का समाज समस्त मानवताओं भोलेपन एवं परम्पराओं को भूलता जा रहा है आधुनिकता की दौड़ में कहीं गिर न पड़े इसका भी ध्यान नहीं रह गया है।

इसी प्रकार ग्राम्य गीतांजलि के तीसरे खण्ड गीतगंगा में कवि ने राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक चेतना एवं सामाजिक पृष्ठभूमि में जिन 15 गीतों की रचना जो खड़ी बोली में की है वह सभी वास्तव में जीवन के संघर्षों को उजागर करते हैं।

रोज नए गम से परेशान हो गयी।  
जिन्दगी दुःखों के जैसे नाम हो गयी।

XX XX

जिन्दगी का कर्ज ढोना पड़ रहा है।  
हर गमों को हँस के धोना पड़ रहा है।

इसी क्रम में कवि के राष्ट्र प्रेम का जो स्तम्भ खड़ा दिखाई देता है वह वास्तव में भारतीय नौनिहालों एवं नौजवानों के लिए प्रेरणा स्रोत है।

आजाद है। "आजाद" को हम याद रखेंगे।  
इस देश की आजादी को आबाद रखेंगे।।

XX XX

गणतन्त्र दिवस जब आता है।  
निज गौरव ध्वज लहराता है।।

इस प्रकार गीतमंदाकिनी, गीतपयस्विनी एवं गीत गंगा की तीनों धाराओं की त्रिवेणी से ग्राम्यगीतांजलि का जो संगम काव्य जगत में बहाने का भगीरथ प्रयास कवि ने किया वह वास्तव में श्लाघ्य है। उसमें प्रत्येक भावुक चाहे डुबकी लगाए, चाहे गोते लगाए चाहे किनारे पर नहाये या बीच धार में अवगाहन करे सर्वविधि आनन्द रस का पान ही करता रहेगा।

मन में तरंग है जी, होली का ये रंग है जी।  
कविता का भंग है जी, थोड़ी पी जाइये।।

समीक्षक

डॉ० विनय कुमार त्रिपाठी

सम्पादक

शोधमार्तण्ड

एवं विभागाध्यक्ष (साहित्य विभाग)

श्री गौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय

सुजानगंज, जौनपुर (उ०प्र०)